मूर्ति - विज्ञान

१०८ गणधराचार्य कुन्थुसागर महाराज

॥ श्री पार्श्वनाथय नमः ॥

मूर्तिविज्ञान

लेखक-विवेचक
श्री १०८ गणधराचार्य कुन्थुसागरजी

प्रकाशक
श्री कुन्थुसागर ग्राफिक्स सेन्टर
प्रकाशन वर्ष-पर्युषण पर्व, १९९७

मूर्ति विज्ञान

लेखक-विवेचक
श्री १०८ गणधराचार्य कुन्थुसागरजी महाराज

प्रकाशक एवं लेसर टाइप-सेटर्स
श्री कुन्थुसागर ग्राफिक्स सेन्टर
६, उमियादेवी सोसायटी नं. २,
अमराईवाडी, अहमदाबाद-३८००२६

प्रथम आवृत्ति
पर्युषण पर्व-१९९७

प्रतियाँ-१०००

मूल्य-११/-रु. मात्र

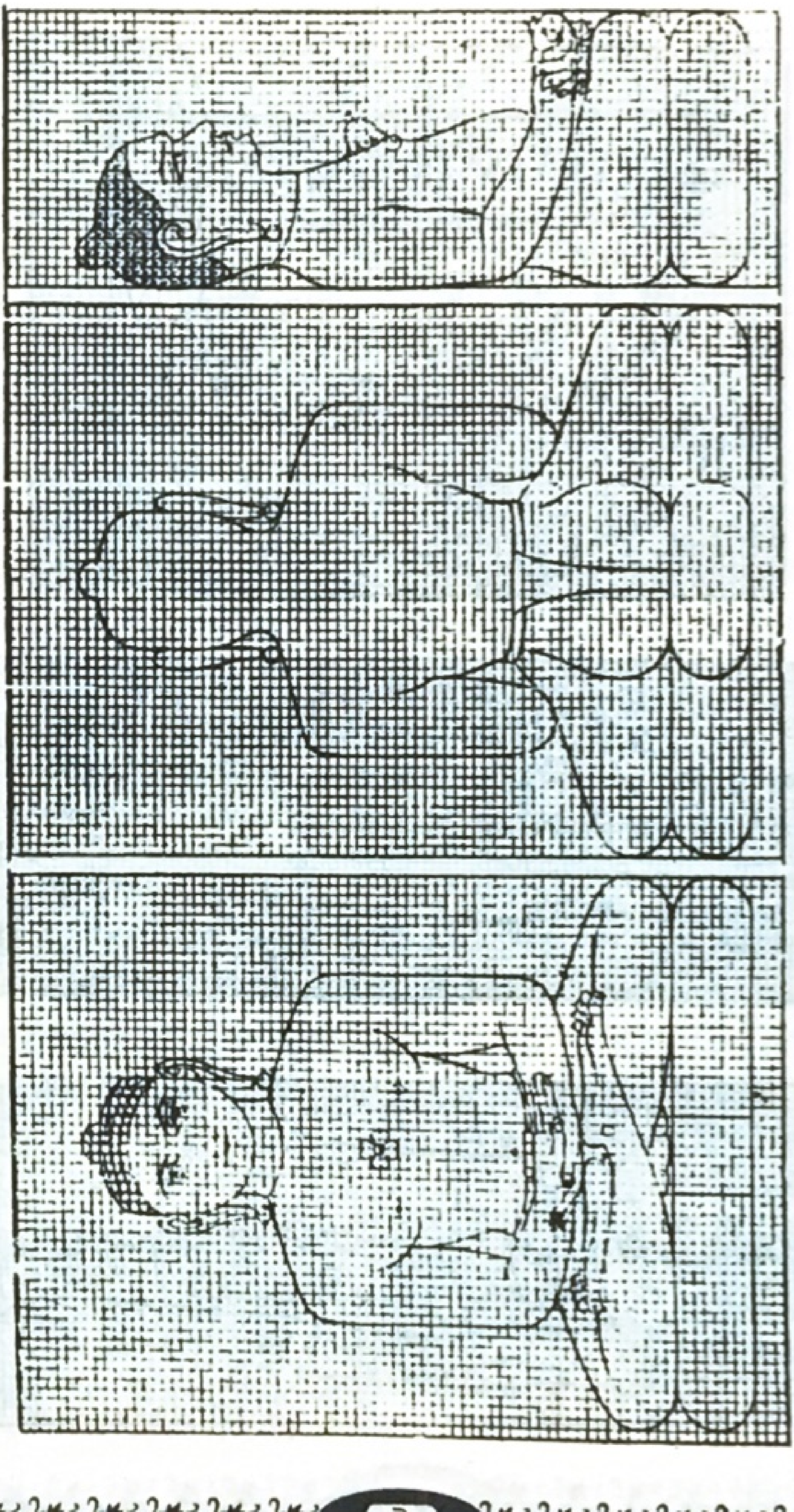

समचतुस्र पद्मासनस्थ श्वेताम्बर जिनमूर्ति का मान

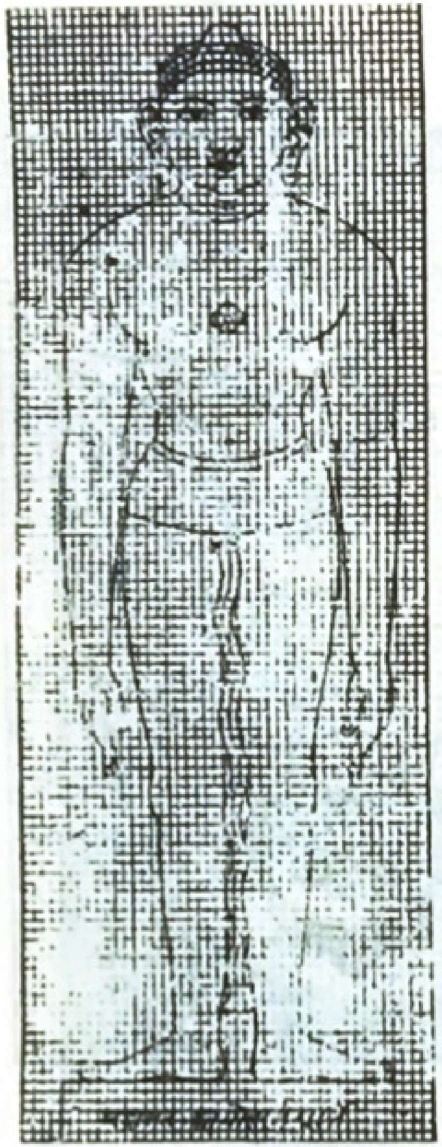

कायोत्सर्गस्थ श्वे. जिनमूर्ति का मान

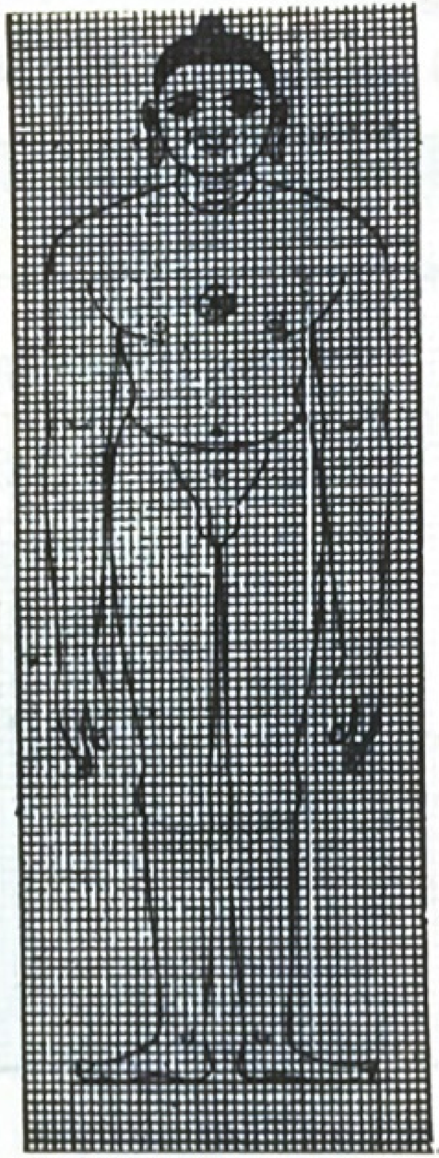

कायोत्सर्गस्थ दि. जिनमूर्ति का मान

समचतुरस्त्र पद्मासनस्थ दिगंबर जिनमूर्ति का मान

अनुक्रमणिका

	पृष्ठ सं.
ग्रंथकार का मंगलाचरण	१३
वेदी का स्वरूप	१४
जिनबिम्ब लक्षण	१६
प्रतिमा निर्माण का मुहुर्त	१८
शिला लाने का मुहुर्त	१८
मूर्ति के लिए शिला परीक्षा	२०
शिक्षा परीक्षा व पूजन	२३
गृह चैत्यालय का जिनबिम्ब-विधान	२५
गृह चैत्यालय जिनबिम्ब का लक्षण	२५
प्रतिमा अंगुल कोष्ठक	२६
गृह चैत्यालय विपरीत दिशाओं में बनाने का फल	२७
आय का ज्ञान और नाप	२८
गृह चैत्यालय की प्रतिमा कैसी हो?	२९
जिनबिम्ब प्रतिमा का प्रमाण	३०
मुख	३०
हाथ	३०
वक्षस्थल	३२
उदर	३२
पेडू	३२
लिंग	३२

पृ. सं.

जांघ	३२
घुटना	३२
पीड़ी	३३
टिंकूण्या	३३
खड्गासन जिन प्रतिमा के प्रमाण का कोष्ठक	४६
प्रतिमा का दृष्टि व हीनाधिक अंग-उपांग का फल	४९
पूजा की दिशा	५१
देवस्थान विचार	५२
विकृत दृष्टि का फल	५२
अतिशय से युक्त खंडित प्रतिमा व अखण्ड प्रतिमा का फल	५४
खंडित प्रतिमा का क्या करें व उसका विधान	५४
जैन प्रतिमा का विज्ञान से उधृत जैन मंदिर और प्रतिमाएँ	५६
मंदिर निर्माण योग्य स्थान	५६
प्रतिमा घटन द्रव्य	५७
गृह पूज्य प्रतिमाएँ	५८
अपूज्य प्रतिमाएँ	५९
भग्न प्रतिमाएँ	६०
जिन प्रतिमा के लक्षण	६१
तालमान	६३

मूर्तिविज्ञान ..... शास्त्रीय विवेचन।

डॉ. शेखरचन्द्र जैन

परमपूज्य १०८ गणधराचार्य श्री कुन्थुसागरजी महाराज ने विविध विषयों पर अपनी कलम चलाई है। उनके लेखन में सीमाचिन्ह रूप उनकी कृतियाँ **लघुविद्यानुवाद, भद्रबाहुसंहिता एवं रत्नकरण्ड-श्रावकाचार** की दो भागों में प्रस्तुत वृहद टीकायें हैं। इसके उपरांत अनेक विधि-विधान मंत्र एवं सैद्धांतिक ग्रंथों का भी सृजन आपने किया है। गणधराचार्य ने इसी परिप्रेक्ष्य में इस लघु पुस्तिका ''**मूर्तिविज्ञान**'' को लिखा है। मंदिर निर्माण व मूर्ति निर्माण में वे विशेष शास्त्रीय दृष्टि सम्पन्न हैं। '' **अणिंदा पार्श्वनाथ**'' अतिशय क्षेत्र उनकी इस दृष्टि सम्पन्नता का प्रतीक है। तद्उपरांत अनेक मंदिरों-मूर्तियों के निर्माण के प्रेरणा-स्रोत रहे हैं।

वर्तमान युग में मंदिरों की संख्या बढ़ रही है। नए मंदिर बन रहे हैं। पुराने मंदिरों व तीर्थों पर नए निर्माण कार्य चल रहे हैं। वर्तमान में तो अब त्रिकाल चौबीसी निर्माण, बाहुबली की मूर्तियाँ अधिक बन रही हैं। आये दिन होनेवाले पंचकल्याणक इसके सूचक हैं। पर, प्रश्न यह है कि ये मंदिर और प्रतिमा क्या पूर्ण रूप से शास्त्रोक्त हैं ? मूर्तियाँ अधिक चाहिए पर निर्माण कर्ता या यो कहें विधि-विधान से निर्माण करने वालों की संख्या घट रही है।

मुनि महाराज ने '**अपने अभिप्राय**' में सच ही कहा है कि वर्तमान में प्रतिष्ठाचार्य पैसे ऐंठने में लगे हैं। वे अपनी अधिक से अधिक प्रतिष्ठायें करवाकर धन इकट्ठा करने के लोभ में अब समाज को तैयार मूर्तियाँ लाने का सुझाव देकर अपना काम सरल कर रहे हैं ।

इसी प्रकार मंदिर भी शास्त्रोक्त विधि नियम व माप-तौल के न होने पर भी उसे चला लेते हैं। आज तो भगवान व मंदिर के साथ भी 'सब चलता है '

चलने लगा है। हाँ! इस सब चलने में भी वे छोटी-मोटी विधि-विधान कराके दक्षिणा प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त कर लते हैं। वे यह जानकर भी कि ऐसे मंदिर और मूर्ति के निर्माण-- यजमान, समाज के लिए कितना अनिष्टकर हो सकता है- फिर भी स्वार्थवश ऐसा करवा देते हैं। अरे ! अब तो प्रतिष्ठा-विधि में भी शास्त्रोक्त विधि कम बाहरी ताम-झाम से रिझाने का काम करने लगे हैं।

ऐसे दूषित वातावरण को दूर करने के लिए पू. गणधराचार्य ने अनेक ग्रंथों के उद्धरण प्रस्तुत करते हुए मूर्ति कैसी हो। उसके लिए शिला के चयन से लेकर पूर्ण निर्माण की विधि, उसके आंगोपांग का माप आदि प्रस्तुत किए हैं। मंदिर की भूमि आदि पर भी विचार व्यक्त किए हैं।

वर्तमान में गृह चैत्यालयों की भी संख्या बढ़ रही है। उसकी भी विधि एवं निर्माण का शास्त्रीय विवेचन कर दिशा निर्देश किया है। लेखक ने खंडित मूर्ति के विषय में पूरी जानकारी देते हुए यह स्पष्ट किया है कि क्षति-युक्त मूर्ति या सदोष मूर्ति के पूजन-अर्चन से क्या नुकसान संभव हैं। इसमें कहीं डराने या भय बताने की बात नहीं है-अपितु अनिष्ट के कारणों को दर्शाकर सही मूर्ति, मंदिर, वेदी आदि निर्माण का मार्गदर्शन ही दिया है। अन्ततोगत्वा इस मूर्ति पूजन से हमारा उद्देश्य तो परम शुभ भावों को प्राप्त कर मुक्ति की ओर अग्रसर होना है। अतः मूर्ति का निर्दोष होना अनिवार्य है।

मूर्तिकार एवं प्रतिष्ठाकार जिन पर मूर्ति बनाने और बनवाने की जिम्मेदारी है वे अवश्य इस पुस्तिका का अध्ययन कर इसी माप-तौल से मूर्ति का निर्माण करायें ताकि मंदिर में प्रतिष्ठित मूर्ति के पूजन-अर्चन से सबका कल्याण हो एवं वीतरागता में वृद्धि हो।

पू. गणधराचार्य ने मुझ जैसे अल्पज्ञ को दो शब्द लिखने का आदेश दिया इसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ। चरणों में वंदन करता हूँ।

डॉ. शेखरचन्द्र जैन

प्रधान संपादक - तीर्थंकरवाणी

भारत गौरव-वात्सल्य रत्नाकर १०८ गणधराचार्य श्री कुन्थुसागरजी के जीवन की एक झलक

राजस्थान के उदयपुर जिले के बाठेड़ा ग्राम में नरसिंहपुरा समाज के अग्रगण्य विद्वान पंडितवर्य रेवाचंदजी एवं श्रीमती सोहनबाई के पुत्र-रत्न के रूप में दिनांक १२-६-१९४६ संवत २००३ को आपका जन्म हुआ। चेहरे पर एक विशेष दिव्य आलोक दमक रहा था जो इस तथ्य का सूचक था कि यही तेज एक दिन जैनधर्म की तेजस्विता को प्रकट करेगा।

ज्योतिषों ने आपकी जन्मकुण्डली में महान भाग्योदय देखा। बालक का नाम प्यार से कन्हैयालाल रखा गया। वैसे राशि का नाम तिलोकचन्द रखा गया। आपने प्राथमिक शिक्षा गाँव में ही प्राप्त की। आपकी शिक्षा और संस्कार में आपके पिता एवं माता का विशेष योगदान रहा। आपकी स्मरण शक्ति और विद्याध्ययन की लगन से आप कक्षा में सर्वप्रथम रहते थे। वैसे बचपन से पानी में डूबते हुए बच सकने वाले कन्हैयालाल अनेकों के तारणहार बनें।

किशोर कन्हैयालाल घर की मध्यमवर्गीय स्थिति को देख-अंग्रेजी शिक्षा की असुविधा, एवं ऐसी शिक्षा से भविष्य के प्रति अनास्थावान होने से, व्यवसाय की शिक्षा हेतु उदयपुर गये। पश्चात् अपने बहनोईजी की सलाह और मदद से अहमदाबाद को व्यवसाय क्षेत्र पसंदकर यहीं दुकान कर ली। इतने संघर्ष में, व्यापार की व्यस्तता में भी आपने धर्म के संस्कार नहीं छोड़े। नियमों को चुस्ती से पालते रहे। मुनियों की सेवा करना आपको आनंद देता था। इसी का प्रतिफल है कि सन् १९६६ आ. श्री. सुबाहुसागरजी की सेवा का अवसर मिला। युवा कन्हैयालाल को मुनियों के लिए एवं मंदिर के लिए जलसेवा करने में परम शाँति का अनुभव होता था।

सुयोग मिला और कन्हैयालाल ने व्रत धारण करने का निश्चय किया। परिवार के लोगों को लगा कि कन्हैयालाल ने मार्ग बदल लिया है- विरोध भी हुआ-समझाया गया पर वैराग्य की इस नई भूमि पर संसार का राग अब अपनी जड़ नहीं जमा सका। सबका समझाना-धमकाना बेकार हो गया। जिज्ञासु कन्हैया को पू. समाधि सम्राट महावीर कीर्तिजी के दर्शन का अवसर मिला, जैसे चातक बादलों को देखकंर विभोर हो जाता है वैसे ही इनका मन गुरु दर्शन से विभोर हो गया। उसे लगा उसे गुरु मिल गया है। यौवन की वासना साधना में बदल गई और बीस वर्ष का युवक आषाढ़ संवत् २०२४ ता. ७-७-१९६७ को मुनि कुन्थुसागर बनकर प्रकट हुआ।

शास्त्राभ्यास, वाणी की मुखरता एवं विश्वासों की दृढ़ता से आपने विधवा विवाह, विजातीय विवाह का डंके की चोट पर खंडन किया। घंटों ध्यान साधना की। भगवान जिनेन्द्र के साथ में माँ पद्मावती की आराधना ही नहीं सिद्धि भी प्राप्त की। मुनि दशा में अल्सर जैसी व्याधियों को शरीर के प्रति निर्मोही बनकर सहन किया। आपने भारत के सभी तीर्थों की वंदना की।

३ जनवरी १९९२ को माघकृष्ण ३ सं. २०२८ को आपको गुरु का विछोह सहन करना पड़ा। गुरु ने समाधि से पूर्व श्री सन्मतिसागरजी को पट्टधर एवं कुन्थुसागर को गणधरपद का भार सौंपा और इतना ही कहा " मेरे बाद तुम लोग ऐसा कार्य न करना जिससे मेरे संघ की परंपरा को कलंक आये। सदैव आर्ष मार्ग का यथावत् अनुसरण, पूर्वाचार्यों की वाणी पर अटूट श्रद्धा एवं अध्ययन मनन, चिंतन करना।"

गणधर कुन्थुसागर की तपाराधना-प्रभाव व ज्ञान से प्रभावित होकर १९ नवंबर १९८० को अकलूज में आ. विमलसागरजी ने सर्वसम्मति से आचार्यपद से विभूषित किया। आचार्यपद के पश्चात् आपका पाद-विदार उत्तर से दक्षिण अबाधगति से चलता रहा। आपके ज्ञान, सरल स्वभाव से आपका संघ दिन-दूना रात चौगुना वृद्धिगत हुआ। उसके दमकते नक्षत्रों ने-आ. कनकनंदी, आ. पद्मनंदी, आ. देवनन्दी, आ. आर्यनन्दी आदि प्रमुख हैं। वर्तमान परिस्थिति में विशाल संघ के निर्वाह की वास्तविक कठिनाइयाँ देखकर आपने अपने ही शिष्यों को अपने जीवनकाल में ही आचार्यत्व प्रदान कर संघ को छोटे-छोटे संघों में स्थापित कर दिया।

आप पूरे भारत वर्ष में आर्ष परंपरा के पुनर्स्थापना एवं सोनगढ़ के मिथ्याचार के खंडन में निरंतर लगे हैं। मंत्र-तंत्र शास्त्र के आप विशेष पंडित हैं। लोगों के कष्ट दूर कर णमोकार की महिमा के प्रचारार्थ लोगों की आलोचना सहन करके भी लोगों की सुख-सुविधा के लिए व जैनधर्म के प्रति श्रद्धा की दृढ़ता बनाये रखने के लिए लोगों को मंत्र-तंत्र द्वारा आशीर्वाद देते हैं।

तीर्थों के उद्धार का भगीरथ कार्य आपने कराया है। 'अणिंदा पार्श्वनाथ' का उद्धार व नवनिर्माण आज राजस्थान और भारत का गौरव बन गया है।

आपके ज्ञान-चारित्र से प्रभावित हो आपको समाज ने भक्ति वश सद्धर्म प्रवर्तक, भारत गौरव, वात्सल्य रत्नाकर जैसी उपाधियों से संबोधन किया।

आप लगभग १४ भाषाओं के ज्ञाता हैं। हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, मराठी, कन्नड़, गुजराती तो धाराप्रवाहिक बोलते हैं। आप महान लेखक हैं जिनका प्रत्यक्ष प्रमाण आप द्वारा रचित साहित्य है।

मेरा अभिप्राय

यह जिनमूर्ति-विज्ञान पुस्तक अब आपके सामने है कुछ ही दिनों में विद्वानों के हाथों में आने वाली है। पुस्तक का विषय जिनमूर्ति विज्ञान है, मूर्ति कैसे बनाई जाय, मूर्ति के लिए पाषाण कैसा हो, मूर्ति बनाने का मुहूर्त कैसा हो, पाषाण की परीक्षा, मूर्ति के लिए पाषाण की पूजा, निर्दोष मूर्ति बनाना, सदोष पाषाण की मूर्ति से बनने से क्या हानि, निष्कलंक मूर्ति से क्या फायदा, मूर्ति के माप-तोल, मूर्ति के आंगोपांग में दोष हो तो क्या नुकसान, आंगोपांग खंडित हो जाने पर उसका क्या करें, उसका प्रायश्चित क्या है आदि मूर्ति संबन्धी सारा विषय इस पुस्तक में है। मूर्ति विराजमान करने के लिए वेदी कैसी है, वेदिका परिकर कैसा है, आदि विषय हैं। वर्तमान का समय बड़ा विषम समय है, प्रमाद का बोलबाला है, अज्ञान छाया हुआ है, हठग्राहिता का बोलबाला है कोई किसी की बात मानने को तैयार नहीं है। सब अपने अपने पंथ-व्यामोह में फँस कर खींचतानी कर रहे हैं। आगम मार्ग अविरणीत हो रहा है आगमोक्त अनुसार मंदिर, वेदी और मूर्ति नहीं बनाने से बहुत कुछ हानि उठानी पड़ रही है। प्रतिष्ठाचार्यों को तो मात्र समाज से प्रतिष्ठा के नाम से लाखों रूपया ऐंठने से ही फुर्सत नहीं है। वर्तमान के एक दो प्रतिष्ठाचार्यों को छोड़कर प्रतिष्ठाशास्त्रों के अनुसार विधि-विधान कराना नहीं आता। उल्टी-सीधी क्रिया करवाते रहते हैं उससे नुकसान ही नुकसानहे। समाज को फायदा कुछ भी नहीं है। मूर्ति बनाने की विधि तो करीब-करीब लोप ही हो गई है। लोग जयपुर जाकर बनी बनाई मूर्ति को पसंद करके ले आते हैं और उसको प्रतिष्ठित कर देते हैं। चाहे उस मूर्ति में दोष हों, चाहे निर्दोष हो, लाने से काम-विधि-विधान से रहित बनी मूर्ति नुकसान ही नुकसान करती है। इस पुस्तक को पढ़ने से आपको ज्ञान होगा कि जिनेन्द्र मूर्ति की स्थापना से समाज को लाभ होना चाहिए। यजमान को वृद्धि होनी चाहि। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि हो वही मूर्ति स्थापना का फल है। समाज को व प्रतिष्ठाचार्यों को प्रमाद अज्ञान हठग्राहिता अवश्य छोड़ना चाहिए। मैंने इस पुस्तक में अनेक शास्त्रों के प्रमाण सहित मूर्ति के बारे में संग्रह किया है, अवश्य पढ़ें। शास्त्रोक्त विधि

से मंदिर, वेदी व मूर्ति बनावें उसी में समाज का कल्याण है। प्रतिष्ठाचार्यों को इतना तो अवश्य ध्यान देना चाहिए। मूर्ति को विधिवत् बनवावे, मात्र अपनी दक्षिणा का ही लोभ नहीं होना चाहिए, लोभी पंडित नियम से दुर्गति जाता है ऐसा आचार्यों का कहना है। इसका अवश्य ही ध्यान दें, आगमोक्त विधिविधान पूर्वक मंदिर, वेदी और मूर्ति बनवावे का यजमान को इस बात ज्ञान नहीं होता, कि मूर्ति कैसी बनाई जाये, बनी बनाई मूर्ति कभी नहीं खरीदनी चाहिए, विधि विधान पूर्वक मूर्ति बनवाना चाहिए। ऐसा आचार्यों का कहना है। इस बात पर अवश्य ही ध्यान दे मूर्ति सदोष नहीं होना चाहिए पूर्ण खोज (निरीक्षण) पूर्वक मूर्ति बनवावें। आगम वचन पर पूरा ध्यान दें।

इस पुस्तक को संकलन करने में बाल गणनि अभिनव चंदन बाला, आर्यिका क्षेमश्री ने परिश्रम किया है उसको मेरा आशीर्वाद, प्रकाशक को भी आशीर्वाद। कुन्थुसागर ग्राफिक्स सेन्टर के संचालक एवं इस पुस्तक पर अपना अभिमत व्यक्त करने वाले डॉ. शेखरचन्द्र को मेरा आशीर्वाद है। पुस्तक के मुखपृष्ठ की डिजाइन, प्रिन्टिग आदि में जिन-जिन का सहयोग रहा उन सबको मेरा मंगल आशीर्वाद है। पुस्तक को पढ़कर अवश्य सदुपयोग करें।

गणधराचार्य कुन्थुसागर

ॐ ह्रीं श्री विघ्न-हर पार्श्वनाथाय नम: ।
ॐ आदि महावीर विमल सन्मति सूरीभ्यो नम:

जिनमूर्ति विज्ञान

मंगलाचरण

चौविसो जिनराज को नमन करूँ त्रिकाल।
गणधरों को स्मरण कर, प्रणमुं बारंबार ॥ १ ॥
महुवा पार्श्वनाथ भगवान जो विघ्नहरण कहलाय,
उनके चरणों नित नमुं, विघ्न सभी नस जाय ॥ २ ॥
महावीर कीर्ति आचार्य को नमन करूँ हर्षाय,
जिन मूर्ति-विज्ञान को लिखूं जिनागम सार ॥ ३ ॥
वसुनन्दि आदि मुनिराज ने लिखा प्रतिष्ठाशास्त्र।
उसही के अनुरूप लिखुं, पढ़ो, करोनुसार ॥ ४ ॥

ग्रंथ कार का मंगलाचरण

अनन्त महिमोपेत मनन्त गुणसागरम्।
अनन्त सुख सम्पन्नं पार्श्वप्रणमाम्यहम् ॥ १ ॥

अर्थ :- अनन्त महिमासु युक्त अनन्त गुणों के सागर और अनन्त सुखों से सहित हैं ऐसे पार्श्वनाथ भगवान को मैं नमस्कार करता हूँ।

पार्श्वनाथ भगवान का मंगलाचरण रूप में ग्रंथकार ने स्मरण किया। फिर कहते हैं। धर्मात्मा शुभमुहूर्त में भूमि परीक्षा करके उत्तम भूमि का निर्णय लेकर उस भूमि पर अच्छे मिस्त्री से सब लक्षणों से युक्त आगमानुसार मन्दिर बनवाए। उसका लक्षण अवश्य ही प्रतिष्ठा शास्त्रानुसार होना चाहिए। जो भी मंदिर बनवावे उसे आगमानुसार ही बनवाना चाहिए। मंदिर का कार्यपूर्ण होने पर, जिसपर जिनेश्वर विराजमान करना है ऐसी वेदी बनवावे।

वेदी जहाँ बननी है वहाँ प्रतिष्ठाचार्य से प्रथम वास्तु विधान कराये फिर भूमि पूजन कर शिलान्यास कर देवे, उसके बाद उत्तम कारीगर से वेदी बनवाना प्रारंभ करें।

वेदी का स्वरूप

सिंहासणु बिंबाओ दिवड्डओ दीहिं वित्थरेअद्धो।
पिंडेण पाउ घडियो रुवग नव अहवसत्त जुओ॥

अर्थ :- सिंहासन लंबाई में मूर्ति से डेढ़ा विस्तार में आधा और मोटाई में पाव भाग होना चाहिए। तथा गजसिंह आदि रूसक नव अथवा सात युक्त बनाना चाहिए।

उभयदिसि जक्ख जक्खिणि केसरी, गज चमर मज्झि चक्कधरो।
चउदस बारस दस तियद्द भाय कमि इअ भयो दीहं॥

अर्थः- सिंहासन में दो तरफ यक्ष और यक्षिणी अर्थात् प्रतिमा के दाहिनी ओर यक्ष, बायीं ओर यक्षिणी, दो सिंह, दो हाथी दो चामर धारण करने वाले और मध्यम में चक्र को धारण करने वाली चक्रेश्वरी देवी बनाना। इनमें प्रत्येक का नाप इसप्रकार है। चौदह-चौदह भाग के प्रत्येक यक्ष और यक्षिणी, बारह-बारह भाग के दो सिंह, दश-दश भाग के दो हाथी, तीन-तीन भाग के दो चँवर करने वाले और छः भाग की मध्य में चक्रेश्वरी देवी। इसप्रकार कुल ८४ भाग लम्बा सिंहासन हुआ।

चक्कधरी गरुडकां तस्साहे धम्मचक्क उभयदिसं
हरिणजुअं स्मरणीयं गद्दियमज्झम्मि जिणचिठहं।

अर्थ :- सिंहासन के मध्य में जो चक्रेश्वरी देवी हैं वह गरुड की सवारी करने वाली हैं। उनकी चार भुजाओं में चक्र तथा नीचे दाहिनी भुजा में वरदान और बायीं भुजा में विजौरा रखना चाहिए इस चक्रेश्वरी देवी के नीचे एक धर्मचक्र बनाना, इस धर्मचक्र के दोनों तरफ एक सुन्दर हिरण बनाना और गादी के मध्य भाग में जिनेश्वर भगवान का चिन्ह करना चाहिए।

चउ कणइ दुन्नि छज्जइ बारस हत्थिहिं दुन्नि अह कणए।
अड अक्खरवट्टीए एयं सीहासणस्सुदयं॥

अर्थः- चार भाग का कणपीठ (काणी) दो भाग का छज्जा, बारह भाग का हाथी आदि रूपक, दो भाग की कणी और आठ भाग अक्षर पट्टी एवं कुल २८ भाग सिंहासन का उदय जानना।

छत्तद्धं दसभायं पंकयनालेग तेरमालधरा
दो भाए थंभुलिए तह ट्ठ वंसधर-वीणधरा
तिलयमज्झम्मि घंटा दुभाय थुंभुलिय छच्चि मगर मुहा
इंअ उभयदिसे चुलसी-दीहंऽउलस्स जाणेह।

अर्थ :- आधे छत्र का भाग दश, कमल नाल एक भाग माला धारण करने वाले भाग, तेरह थंभली दो भाग, बंसी और वीणा को धारण करने वाले अथवा बैठी प्रतिमा का भाग आठ तिलक के मध्य में (घूमटी) दो भाग थंमली और छः भाग मगरमुख एवं एक तरफ के ४२ भाग और दूसरी तरफ के ४२ भाग ये दोनों मिलकर कुल चौरासी भाग ठउला का विस्तार जानना।

चउवीसि भाइ छत्तो बारस तस्सुदह अट्ठि संखधरो।
द्दहि वेणुवत्तवल्ली एवं ऽउलुदये पन्नासं ॥

अर्थ :- चौबीस भाग के ऊपर छत्र त्रय का उदय, बारह भाग इसके ऊपर आठ भाग का शंख धारण करने वाला और इसके ऊपर छः भाग के वंशपात्र और लता एवं कुल पचास भाग ठउला का उदय जानना।

छत्रत्तयं वित्थारं विसंगुलं निग्गमे दह भायं
भामण्डल वित्थारं बावीस अट्ठ पइ सारं।

अर्थ :- प्रतिमा के मस्तक के छत्र त्रय का विस्तार बीस अंगुल (भाग) और निर्गम दस भाग करना। भामण्डल का विस्तार भाग और मोटाई आठ भाग करना।

मालधर सोलसंसे ग इंद अट्ठारसम्मि ताणुवरे
हरिणिंदा उभयदिसं तओ अ दंदहि अ संखवीय

अर्थ :- दोनों तरफ माला धारण करने वाले इन्द्र सोलह-सोलह भाग की ओर, उनके ऊपर दोनों तरफ अठारह-अठारह भाग के एक-एक हाथी, उन हाथियों के ऊपर बैठे हुए हरिण गमेषी देवी बनाना। उनके सामने दुंदभी बजाने वाले और मध्य में छत्र के ऊपर शंख बजाने वाला बनाना चाहिए।

बिंबद्धिऽउलपिंडं छत्तसमेयं हवइ नायत्वं
थणसुत्तसमादिट्ठी चामर धारीण कायत्वा

अर्थ :- छत्र त्रय समेत ऽउला की मोटाई प्रतिमा से आधी जानना । पखवाडे में चामर धारण करने वाले की अथवा काउसग्ग ध्यानस्थ प्रतिमा की दृष्टि मूलनायक प्रतिमा के स्तन सूत्र के बराबर रखना चाहिए।

जइ हुंति पंच तित्था इमेहिं भाएहिं तेविपुठा कुज्जा
उस्सग्गियस्स जुअलं बिंबजुगं मूल बिंवगे

अर्थ :- पखवाड़े में जहाँ दो चामर धारण करने वाले हैं उस ही स्थान पर दो काउसग्ग ध्यानस्थ प्रतिमा तथा ऽउला में जहाँ वंश और वीणा धारण करने वाले हैं वहीं पर पद्मासनस्थ बैठी हुई दो प्रतिमा और एक मूलनायक। इसी प्रकार पंचतीर्थों यदि परिकर में करना होवे तो पूर्वोक्त जो भाग चामर वंश और वीणा धारण करने वाले के हैं उसी भाग प्रमाण से पंचतीर्थों (पांच बालयतिं) को भी बनाना चाहिए।

विशेष वेदी का लक्षण यही हैं सामन्यवेदी भी शास्त्रोत्तक हो।

जिनबिम्ब लक्षण

जिनबिम्बार्थ मानेतुं गच्छेच्छिल्पिसमन्वितः
सुमुहूर्ते सुनक्षत्रे वाद्य वैभव संयुक्तः
प्रसिद्ध पुण्यदेशेषु नदीनगवनेषु च
सुस्निग्धां कठिनां चैव सुखदां सुवस्वरां शिलाम्
समानीय जिनेन्द्रस्य बिम्ब कार्य सुशिल्पिभिः

अर्थ :- इत्यादि सुलक्षणों से भरपूर जिनमन्दिर बनावाये। जब मन्दिर पूर्ण हो जाय तब कारीगरों को साथ लेकर अच्छे मुहूर्त में गाजे-बाजे और उत्तम ठाठ-बाट के साथ जिनबिम्ब बनवाने के लिए शिला लाने को जावे । प्रसिद्ध पुण्य-स्थानों में घूमकर नदी पर्वत और वन में जाकर अच्छी चिकनी कठिन सुख देने वाली, बजाने से जिसमें सुर अच्छा निकलता हो ऐसी उत्तम-शिला लाकर उसे जिनबिम्ब बनवाने के लिए अच्छे शिल्पकारों के सुपुर्द करें।

कक्षा दिरोमहीनाङ्गश्मश्रु रेखा विवर्जितम्।
स्थितं प्रलम्बितहस्तं श्री वत्साढ्यं दिगम्बरम्॥

पल्यङ्कासनं वा कुर्याच्छिल्पि शास्त्रनुसारतः
निरायुद्धं च निःस्त्रीकं भ्रूक्षेपादि विवर्जितम्
निराभरणकं चैव प्रफुल्लवदनाक्षिकम्
सौवर्ण राजतं वाऽपि पैतलं कांस्यजं तथा
प्रावालं मौक्तिकं चैव वैडूर्यादि सुरत्नजम्
चित्रजं च तथा लेप्यं कचिच्चान्दनजं मतम्
प्रातिहार्याष्टकोपेतं सम्पूवर्णयवं शुभम्।
भावारूपानुविविद्धाङ्ग कारयेद्बिम्ब मर्हतः

अर्थ :- जो जिनबिम्ब तैयार कराया जाय वह इन लक्षणों से युक्त होना चाहिए। जिनबिम्ब के कूख आदि स्थानों में बालों के चिन्ह न हों, हजामत वगैरह की रेखा न हो। खडगासन हो, जिसके दोनों हाथ सीधे लम्बे लटकते हुए हों, श्री वत्स चिन्ह वाला हो या खड़गासन न हो तो पल्याकासन (पद्मासन) हो अर्थात् खड़गासन या पद्मासन ही हो जिसकी रचना शिल्पशास्त्र के अनुसार गदा, तोमर आदि आयुधों से रहित हो, भ्रूक्षेप आदि दोषों से रहित हो, आभरण से रहित हो जिसका चेहरा और नेत्र प्रफुल्लित हो, वह जिनबिम्ब चाहे पत्थर का हो चाहे सोना-चाँदी, पीतल, कांसी, प्रवाल,मोती और अच्छे-अच्छे वैडूर्यादि रत्नों का हो चित्रज चित्र की लेप्य-मन्दिर की दिवाल पर चित्रामकी की बनाई हुई और कहीं-कहीं चन्दन की बनी हुई प्रतिमा भी मानी जाती है। यह छत्र चामर आदि आठ-प्रानिहार्यों से युक्त हो, जिसके शारीरिक अवयव परिपूर्ण और शुभ हों, देखने में ऐसा हो कि जो मनुष्य के भावों को अपनी और खींचती हों अर्थात् वीतरागता को लिए हुए हो।

प्रातिहार्यैर्बिना शुद्धं सिद्धबिम्बमपीदृशम्।
सूरीणां पाठकनां च साधूनां च यथागमम्॥

अर्थ :- प्राविहार्य को छोड़ सिद्ध बिम्ब भी ऐसा ही होना चाहिए तथा आचार्य उपाध्याय और साधुओं की प्रतिमा भी आगम के अनुसार ऐसी ही होनी चाहिए।

वामे च यक्षीं विभ्राणं दक्षिमं यक्षमुत्तमम्
नवग्रानधोभागे मध्ये च क्षेत्रपालकम्
यक्षाणां देवतानाम् च संर्वालङ्कार भूषितम्
स्ववाहनायुधोपेतं कुर्यात्सर्वाङ्ग सुन्दरम्।

उस अरहन्त की प्रतिमा के बाँयी ओर यक्षी हो ओर दाहिनी और यक्ष हो। प्रतिमा के नीचले भाग में नवग्रह हो, पीठ के मध्य में क्षेत्रपाल हो तथा यक्षों और यक्षियों की प्रतिमा सम्पूर्ण अलंकारों से सजी हुई अपने-अपने वाहन और आयुधों से युक्त सर्वांग सुन्दर बनावें।

लक्षणै रपि संयुक्त बिम्बं दृष्टिविवर्जितम्।
न शोभते यतस्तस्मात्कुर्यादि दृष्टि प्रकाशनम्॥

अर्थ :- यदि प्रतिमा उक्त लक्षणों से युक्त हो परन्तु उसकी दृष्टि नजर ठीक-ठीक न हो तो वह देखने में सुन्दर नहीं लगती हैं। इसलिए प्रतिमा की दृष्टि बनवाना चाहिए।

प्रतिमा निर्माण का मुहूर्त

गेहेनिष्पाद्यमाने च निष्पन्नेवा भविष्यति।
शिलांबिंबार्थ माने तुं गच्छेत्ठिल्यिसमन्वितः ॥ ६७॥

अर्थः- जिनबिंब के लिए बिम्बा अनुसार शिला लाने के लिए (शिल्पी) मूर्तिकार को साथ में लेकर जावे जब जिन मंदिर के निर्माण का कार्य पूर्ण जावे।

शिला लाने की मुहूर्त

कृत्वा महोत्सवंत तत्र निमित्तान्यवलोक्य च।
यात्रानुकूल नक्षत्रे विलग्ने शोभनेदिने ॥ ६८॥

अर्थ :- महोत्सव करके गमन के समय में नाना प्रकार के निमित्तों को देखकर यात्रानुकूल नक्षत्र एवं शुभलग्न शुभ दिन में गमन करे।

रेवत्या, श्रवणे हस्ते, पुष्येश्विन्यां पुनर्वसौ।
ज्येष्टयांचानुराधायां, धनिष्ठायां मृगे व्रजेत् ॥ ६९॥

अर्थ :- रेवती, श्रवण, हस्त, पुष्य, अश्विनी, पुनर्वसु, ज्येष्ठा अनुराधा, धनिष्ठा और मृगशिरा इन नक्षत्रों में शिला लाने के लिए प्रस्थान करें।

पूर्वादि कृतिकाद्येषु क्रमाद्दक्षेषु सप्तसु।
वायव्यानलदिग्रेखां यात्रा यां नैव लंघयेत् ॥ ७०॥

अर्थ :- पूर्वादि नक्षत्रों से लगाकर कृतिका पर्यन्त क्रमशः इन सात नक्षत्रों को भी यात्रा के लिए उल्लंघन नहीं करें।

हस्तपुष्याश्विव मित्रेषु दिक्षु सर्व्वा स्वपि व्रजेत्।
प्रत्यंगारं बुधं शुक्रं दक्षिणं च विवर्जयेत् ॥७१॥

अर्थ :- हस्त, पुष्य, अश्विनी, अनुराधा ये नक्षत्र चारों दिशाओं की यात्राओं में शुभ होते हैं, किन्तु मंगल बुध और शुक्रवार को दक्षिण में नहीं जाना चाहिए।

सूर्यः शुक्रः कुजोराहु शनिश्चंद्रो बुधोगुरु,
पूर्वादि स्वामिनस्तेषु तांदिशं व्रजतांशुभम् ॥७२॥

अर्थ :- रविवार, शुक्रवार, मंगल, राहु, शनि, चंद्र, बुध, गुरु, ये सब पूर्वादिक के स्वामी है, पूर्व दिशा में यात्रा करना शुभ है।

राहुमन्दकुजाः शस्तास्तित्रषष्ठैकादशस्थिताः
बुधः षट्द्वि दशत्यक्त्वा षट्सप्तात्यं भृगुस्तथा
शशीषष्टाष्ट जन्मां त्यंषट् द्वयष्टां त्यंगुरुस्तथा
चतुर्थ दशमं त्यक्त्वा क्षिणश्चंन्द्र शुभं पुनः
त्रिदशैकादशेषष्ठ स्थितः सूर्यः शुभप्रदः
यात्रा लग्नं प्रसादध्यैवं प्रगच्छे गोचरे शुभे ॥

अर्थ :- राहु, शनैश्चर, मंगल ये तीनों तृतीय षष्ठ और एकादश स्थान में शुभ होते हैं। बुध छठवें दूसरे और दशवें स्थान को छोड़ शेष स्थानों में शुभ होता है। शुक्र छठवें सातवें और बारहवें को छोड़कर शेष स्थानों में शुभ है। क्षीण चन्द्रमा चौथे और दशवें को छोड़ शेष स्थानों में शुभ है। सूर्य तीसरे छठवें ग्यारहवें स्थान में शुभ होता है। इस प्रकार से यात्रा लग्न की शुद्धि देख लेनी चाहिए तथा प्रतिष्ठा के समान गोचर शुद्धि भी देख लेनी चाहिए। **(वसुनन्दी प्रतिष्ठापाठ)**

तीनों उत्तरा (उ.फा., उ.षा., उ. भाद्र, पुष्य, रोहिणी, श्रवण, चित्रा धनिष्ठा, आद्रा,इन नक्षत्रों में और सोम, गुरु, शुक्र इन वारों में बिम्ब निर्माण करना शुभ है। मतान्तर से अश्विनी, हस्त, अभिजित, मृगशिर, रेवती व अनुराधा भी लिये गये हैं।

प्रतिमा बनाने वाला प्रसन्न मन से पुष्प, वस्त्र, ताम्बूल दक्षिणा आदि के द्वारा शिल्पी

को संतुष्ट करके चित्ताकर्षक मनोज्ञ जिनबिम्ब को, गुरुपुष्य और रवि हस्त योग में तथा जिन भगवान का बिंब बनाना हो उनके गर्भ कल्याणक के दिन में शुभ निमित्तों को देखकर प्रतिमा निर्माण का करना शुभ है।

प्रतिमा निर्माण मुहूर्त चक्र

नक्षत्र	पु, रो, श्र, चि, ध, आ, अश्वि, उ.फा. उ.षा., उ.भा., ह. मृ., रे, अनु
वार	सोम, गुरु, शुक्र (बुध भी लिया है।)
तिथि	२/३/५/७/११/१३

मुहूर्त चिन्तामणि

मूर्ति के लिए शिला परीक्षा

निर्मल नार नालेन पिष्टया श्रीफल त्वचा।
विलिप्तेऽश्मानि काष्ठे वा प्रकटै मण्डलं भवेत ॥

अर्थ :- निर्मल कांजी के साथ बेलवृक्ष के फल की छाल पींसकर पत्थर पर अथवा लकड़ी पर लेप करने से मंडल (दाग) प्रकट हो जाता है।

मधु भस्म गुडव्योम कपोत सहङ्गप्रभः।
माञ्जिष्ठै ररूरौः पीतैः कपिलैः श्यामलैरपि॥
चित्रैश्चपण्डलैरैभिरन्तर्ज्ञेया यथाक्रमम् ॥
खद्योतोवालुकारक्त भेकोऽम्बुगृहगोधिका।
दुर्दुरः कृकलासश्च गोधाखुसर्पवृश्चिकाः।
सन्तान विभव प्रमाण-राज्योच्छेदश्च तत्फलम् ॥

अर्थ :- जिस पत्थर की अथवा काष्ठ की प्रतिमा बनाना होवे, उसी पत्थर अथवा काष्ठ के ऊपर पूर्वोक्त लेप करने से अथवा स्वाभाविक यदि मध के जैसा मण्डल देखने में आवे तो भीतर खद्योत जानना। भस्म के जैसा मण्डल देखने में आवे तो भीतर लाल मेंढक, आकाश, वर्ण का मण्डल देखने में आवे तो पानी, कपोत (कबूतर) वर्ण का मण्डल देखने में तो छिपकली, मंजिष्ठ जैसा देखने में आवे तो मेंढक, रक्त वर्णका देखने में आवे तो शरह (गिरगिट), पीले वर्ण का देखने में आवे तो गोह, कपिलवर्ण का मण्डल देखने में आवे तो उदर, काले वर्ण का देखने में आवे तो सर्प और चित्र वर्ण

का मण्डल देखने में आवे तो भीतर बिच्छु है ऐसा समझना। इसप्रकार के दाग वाले पत्थर लकड़ी होवे, तो सन्तान लक्ष्मी, प्राण और राज्य का विनाश कारक है।

कोलिकाछिद्र सुषिर-त्रस जालक सन्धयः।
मण्डलानि च गारश्च महादूषण हेतवे॥

अर्थ :- पाषाण अथवा लकड़ी में कीला छिद्र, पोलापन, जीवों के जाले, सांध, मण्डलाकार रेखा अथवा कीचड़ होवे तो बड़ा दोष मानते हैं।

प्रतिमायां दवर का भवेपुश्च कथञ्चन।
सदृग्वर्णा न दुश्यन्ति वर्णान्यत्वेऽतिदूषिता॥

अर्थ :- प्रतिमा के कण्ठ में अथवा पाषाण में किसी भी प्रकार की रेखा (दाग) देखने में आवे, वह यदि अपने मूल वस्तु के रंग के जैसी होवे तो दोष नहीं है, किन्तु मूल वस्तु के रंग से अन्यवर्ण की होवे तो बहुत दोष वाली समझना चाहिए।

(विवेक विलास में)

नन्धावर्त वसुन्धरा धरहय-श्री वत्स कूर्मेणमाः,
शंङ्ख स्वस्तिक हस्तिगो वृषनिभाः शक्रेन्दु सूर्योपमाः।
छत्रस्त्रग्ध्वजलिंग तोरणमृग प्रासादपपोपमा।
वज्रा भागरूडोपमाश्चशुभदा रेखाः कपर्दोपमाः।

अर्थ :- पत्थर अथवा लकड़ी में नंद्यावर्त, शेषनाग, घोड़ा श्री वत्स कछुआ, शंख, स्वस्तिक, हाथी, गौ, वृषभ, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, छत्र, माला, ध्वजा, शिवलिंग, तोरण, हरिण, प्रासाद (मन्दिर) कमल, गरुड अथवा शिव की जटा के सदृश रेखा होवे तो शुभ दायक है। (कुमार मुनिकृत शिल्प रत्न में।)

हृदये मस्तके, भाले अंशयोः कर्णयोर्मुखे।
उदरे पृष्ठ संलग्ने हस्तयोः पादयोरपि॥
एतेष्वङ्गेषु सर्वेषु लाञ्छन नीलिका।
बिम्बानां यत्र दृश्यन्ते त्यजेत्तानि विचक्षणः॥
अन्यस्थानेषु मध्यस्था त्रासफाट विवर्जिता।
निर्मलास्निग्धशान्ता च वर्णसा रूप्याशालिनीः।

अर्थ :- हृदय, मस्तक, कपाल, दोनों स्कंध कान, मुख पेट, पृष्ठ भाग, दोनों हाथ, और दोनों पग इत्यादिक प्रतिमा के किसी अंग पर अथवा सब अंगों में नीले आदि रंग वाली रेखा होवे तो उस प्रतिमा को पंडित लोग अवश्य छोड दें। उक्त अंगों के सिवाय दूसरे अंगों पर होवे तो मध्यम है। परन्तु खराब चीरा आदि दूषणों से रहित, स्वच्छ, चिकनी और ठंडी ऐसी अपने वर्ण सदृश रेखा होवे तो दोष वाली नहीं है।

(प्रतिमा किस किसकी हो वसुनन्दी प्रतिष्ठापाठ)

बिम्बं मणिमयं, चन्द्र-सूर्यकान्त मणीयम्।
सर्वसमगुणं ज्ञेयं सर्वामीरत्न जातिभिः॥

अर्थ :- चन्द्रकान्तमणि, सूर्यकान्तमणि आदि सब रत्नमणि के जाति की प्रतिमा समस्त गुण वाली है।

स्वर्णरूप्य ताम्रमयं वाच्यं धातुमयं परम्।
कांस्यसीसवङ्गमयं कदाचिन्नैव कारयेत्।
तत्र धातुमयेराति मयमाद्रियते क्वाचित्॥
निषिद्धोमिश्रधातुः स्याद् रीतिः केश्चिच्च गृह्यते॥

अर्थः- सुवर्ण, चाँदी और ताँबा इन धातुओं की प्रतिमा श्रेष्ठ है। किन्तु काँसे की, शीशा और कलई इन धातुओं की प्रतिमा कभी नहीं बनाना चाहिए। धातुओं में पीतल की प्रतिमा बनाने को कहा है। किन्तु मिश्रधातु (कांसी आदि) की बनाने का निषेध किया है, आचार्य ने पीतल की प्रतिमा बनाने को कहा है। **(आचार दिनकर में)**

कार्य दारूमयं चैत्ये श्रीपर्ण्या चन्दनेन वा।
बिल्वेन वा कदम्बेन रक्तचन्दन दारूण।
पियालो दुम्बरा भ्यां वा क्विचिच्छि शिमयापि वा।
अन्य दारूणि सर्वाणि बिम्बकार्ये विवर्जयेत्॥
तन्मध्ये च शलाकायं बिम्ब योग्यं च यद्भवेत्।
तदेव दारू पूर्वोक्तं निवेश्यं पूतभूमिजम्॥

अर्थ :- चैत्यालय में काष्ठ की प्रतिमा बनवाना होवे तो श्री पर्णी, चन्दन, बेल, कदंब, रक्त चंदन, पियाल, उदम्बर, (गुलर) और क्वचित शीशम वृक्षों की लकड़ी की प्रतिमा बनवाने के लिए उत्तम माना है। बाकी दूसरे वृक्षों की लकड़ी वर्जनीय

है। ऊपर कहे हुए वृक्षों में जो प्रतिमा बनने योग्य शाखा होवे वह दोषों से रहित और वृक्ष पवित्र भूमि में उगा हुआ होना चाहिए।

अशुभ स्थाननिष्पन्नं सत्रासं मशकान्विताम्।
ससिरं चैव पाषाणं बिम्बार्थं न समानयेत्॥
नीरोगं सुदृढं शुभ्रं हारिद्रं रक्तमेववा,
कृष्णं हरिं च पाषाण बिम्ब कार्ये नियोजयेत्॥

अर्थ :- अपवित्र स्थान में उत्पन्न होने वाले चीरा, मसा अथवा नस आदि दोषवाले ऐसे पत्थर प्रतिमा के लिए नहीं लाना चाहिए, किन्तु दोषों से रहित मजबूत सफेद पीला, लाल, काला हरा पत्थर प्रतिमा के लिए लाना चाहिए। **(आचार दिनकर में)**

शिला परीक्षा व पूजन कर लाना।

गच्छत्वेवं प्रयत्नेन सम्यंगन्वेषयेच्छिलाभ।
प्रसिद्धपुण्यदेशेषु नदी नग, वनेषु च ॥ ७६ ॥

अर्थ :- प्रयत्नपूर्वक जाकर अच्छी तरह से पुण्य प्रदेश की अथवा नदी, पर्वत और जंगल में शिला की खोज करें।

श्वेता रक्ता, सिता, पीता, मिश्रा पारावत प्रभा।
मुद्रकापोत पद्माभामां जिष्टाहरित प्रभा ॥ ७८ ॥
कठिना शीतला स्निग्धा सुस्वादा सुस्वरादृढा।
सुगंधात्यंत तेजस्का मनोज्ञाचोत्रमा शिला ॥ ७९ ॥

अर्थ :- जिनेन्द्र प्रतिमा बनाने के लिए शिला सफेद, लाल, काली पीली, मिश्र, वर्ण कबूतर के समान रंग वाली, मूंगा वर्णवाली, कबूतर के वर्णवाली, पद्म आभा के समान, कमल के समान अथवा मंजीष्ठ के रंग की अथवा हरे रंग की कठिन शीतल, स्निग्ध, सुस्वादु और सुस्वर वाली दृढ़ सुगन्धित तेजवान और मनोज्ञ होवे। ऐसी गुणवाली शिला ही मूर्ति बनाने के लायक होती है।

मद्रीवर्ण दुर्गंधा लघ्वीरूक्षा च धूमला।
निःशब्दा बिंदु रेखादि दूषिता वर्जिताशिला ॥ ७९ ॥

अर्थ :- विवर्ण से सहित, दुर्गंधित, हल्की, रूक्ष धूमला, निशब्द, बिन्दु रेखादि दूषिता शिला मूर्ति बनाने के लिए वर्जित है।

परीक्ष्यैवंशिलासम्यक् तत्र कृत्वा महोत्सवम्।
पूजां विधाय शस्त्राग्रं हुं कारेणभिमन्त्रयेत् ॥ ८० ॥
शिलां विभिद्यशस्त्रेण पुनर्गंधादिभिर्यजेत्।
प्रदोष समयेकृत्वा गंधर्हस्तानुलेपनम् ॥ ८१ ॥

अर्थ :- शिला की परीक्षा अच्छी तरह से करके यहाँ पर महोत्सव पूर्वक शिला पूजा करे, शास्त्रादि की भी पूजा कर **हुं कार** मंत्र से मंत्रित करे फिर शिला को शस्त्र से तरासकर पुनः गन्धादि से पूजा करे, तदन्तर दोनों हाथों में गंधादि सुगन्धित पदार्थ लगाकर प्रदोष (संध्याकाल) काल में।

सिद्धभक्तिं विधायादौमन्त्रमनसिसंस्मरेत्।
ॐ नमोस्तु जिनेन्द्राय ॐ प्रज्ञाश्रवणे नमः ॥ ८२ ॥
नमः केवलिने तुभ्यं नमोस्तु परमेष्ठिने।
स्वप्नेमेदेविवियांगे ब्रूहितकार्यशुभाशुभम् ॥ ८३ ॥

अर्थ :- सिद्ध भक्ति पढ़कर पञ्च मन्त्र को मन में स्मरण करे पुनः यह मंत्र पढ़े **ॐ नमोस्तु जिनेन्द्राय ॐ प्रज्ञा श्रवणे नमोनमः। केवलिनेतुभ्यं नमोस्तु परमेष्ठिने मम् स्वप्ने शुभाशुभ कार्यं ब्रूहि-ब्रूहि स्वाहा।** और ऐसा कहे मेरे स्वप्न में शिला सम्बन्धी शुभाशुभ कहो।

शिला की अच्छी तरह से परीक्षा कर भूमि पूजा की तरह पूजाकर प्रोक्षण मंत्र से **ॐ झं वं ह्वः पः इवीं क्ष्वीं स्वाहा,** मन्त्र से शिला को धोकर **ॐ हूं फट स्वाहा।** इस शस्त्र मन्त्र से शिला को तरासे, फिर घर पर आकर रात्रि में अष्टांग निमित्त का विचार करे प्रथम स्नान कर शुद्ध वस्त्र पहन कर दोनों हाथों में गंध लगाकर सिद्ध भक्ति पढ़े। फिर उपरोक्त मन्त्र पढ़े और सो जावे। (आशाधर प्रति. पृ. ६)

अनेनदिव्य मन्त्रेण सम्यग् ज्ञात्वा शुभाशुभम्।
प्रातस्तत्रपुनर्गत्वा पूजयेत्रां शिलांततः ॥ ८४ ॥
यथाकोटि शिलापूर्व चालिता सर्व्वविश्नुभिः।
चालयामि तथोत्रिष्ठ शीघ्रं चल महाशिले ॥ ८५ ॥

अर्थः- और भी अन्य दिव्य मंत्रों से शुभाशुभ जानकर प्रातः जहाँ शिला है वहाँ जावे। शिला की पूजाकर मन में स्मरण करे *''जैसे पहले नारायणों ने कोटि शिला उठाई थी, वैसे में भी हे महाशिले तुमको उठाता हूँ तुम शीघ्र उठो।''*

सप्ताभिमन्त्रितां कृत्वा, मन्त्रेणा नेनतां शिलाम्।
पीठार्थं प्रतिमार्थं वारथ मारोपयेत्रतः ॥ ८६ ॥

अर्थ :- उस शिला को इस मन्त्र से सात बार मन्त्रित करके रथ में अथवा कोई भी वाहन में स्थापित करे। चाहे व वह शिला जिन प्रतिमा के लिए हो अथवा पीठ के लिए। इस विधि से वाहन में स्थापित करे।

ॐ हूं फट स्वाहा। इति शस्त्र मंत्र
ॐ झं वं ह्वः पः क्ष्वीं क्ष्वीं स्वाहा।
एवं मानीयतां सम्यकृत्रिः परित्य जिनालयम्।
कृत्वा महोत्सवं सुदिने सं प्रवेशयेत् ॥ ८७ ॥

अर्थ :- इस प्रकार उस शिला को लेकर जावे, प्रथम जिनालय की तीन प्रदक्षिणा लगावे, महान महोत्सव पूर्वक अच्छे शुभ मुहूर्त के अन्दर नगर में प्रवेश करे।

('इति शिलानयनम्')

गृह चैत्यालय का जिनबिम्ब-विधान,

एकादशांगुलं बिम्ब सर्वका मार्थं साधकम्।
एतत प्रमाण माख्यातं मतोर्द्धनं कारयेत्॥
भालनाशा हनुग्रीवा हृन्नाभि गुह्य मुरूके।
जानुजंघाघ्रिचैत्ये का दशांक स्थानकानि तु॥

अर्थ :- भाल १, नाशा २, हनु ३, ग्रीवा ४, हृत् ५, नाभि ६, नयन ७, गुह्यांग ८, ऊरू ९, जानु १०, जंघा ११, चरण १२, कर्ण १३, हस्त १४

गृह चैत्यालय जिनबिम्ब का लक्षण

अथातः सं प्रवक्ष्यामि गृह बिम्बस्य लक्षणम्।
एकाङ्गुलंभवेत्श्रेष्ठं द्वयंगुलंधन नाशनम्॥

अर्थ :- अब मैं ग्रहबिम्ब का लक्षण कहता हूँ, एक अंगुल की मूर्ति श्रेष्ठ है, दो अंगुल की मूर्ति गृहस्थ के घर में रहे तो धन का नाश करती है।

त्र्यंगुले जायते वृद्धिः पीडास्यच्चातुरंगुले।
पञ्चागुले तु वृद्धिः स्याद्‌द्वेगः षडंगुले ॥२॥

अर्थ :- तीन अंगुल की प्रतिमा वृद्धि करती है, चार अंगुल की प्रतिमा गृह्याति को पीड़ा करती है, पाँच अंगुल की प्रतिमा से वृद्धि होती है एवं छः अंगुल की प्रतिमा उद्वेग करती है।

सप्तांगुलेगवां वृपते वृद्धि हानिरष्टाङ्गुलेमताः।
नवांगुलेपुत्रवृद्धि र्धननाशोदशांगुले ॥३॥

अर्थ :- सात अंगुल की प्रतिमा से गोधनादिक की वृद्धि होती है आठ अंगुल की प्रतिमा से हानि होती है, नौ अंगुल की प्रतिमा पुत्र वृद्धि करती है, दश अंगुल की प्रतिमा से धन का नाश होता है।

एकादशांगुलं बिम्बं सर्वकामार्थसाधनम्।
एतत्प्रमाणमारव्यातं मत् उर्ध्व न कारयेत् ॥४॥

अर्थ :- ग्यारह अंगुल की प्रतिमा सम्पूर्ण मनोरथों की सिद्धि देने वाली है, इसप्रकार मैने यह कहा ग्यारह अंगुल के ऊपर ग्रह चैत्यालय में प्रतिमा स्थापन नहीं करना चाहिए।

प्रतिमा अंगुल कोष्ठक

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
श्रेष्ठ	धन का नाश	वृद्धि	पीड़ा	वृद्धि	उद्वेग	गोधन आदि वृद्धि	हानि	पुत्र वृद्धि	धन नाश	सर्वार्थ सिद्धि

अर्थात् एक अंगुल, ३ अंगुल, ५ अंगुल, ७ अंगुल, ९ अंगुल ११ अंगुल अंगुल की प्रतिमा ग्रह चैत्यालय में श्रेष्ठ है २-४-६-८-११ अंगुल की प्रतिमा ग्रह चैत्यालय में कभी भी स्थापना नहीं करना चाहिए।

(प्रतिष्ठासारोद्धार वा उमास्वामी श्रावकाचार)

गृह चैत्यालय विपरीत दिशाओं में बनाने का फल

क्र.	दिशा	फल	
१	पूर्व	ऐश्वर्य लाभ, मान-सम्मान, प्रतिष्ठा प्राप्ति,	शुभ
२	आग्नेय	पूजा आराधना फल का निष्फल जाना,	अशुभ
३	दक्षिण	शत्रुता की वृद्धि	अशुभ
४	नैऋत्य	भूत पिशाच की बाधा में वृद्धि	अशुभ
५	पश्चिम	ऐश्वर्य हानि, धन नाश	अशुभ
६	वायव्य	रोग उत्पत्ति	अशुभ
७	उत्तर	धन लाभ ऐश्वर्य प्राप्ति	शुभ
८	ईशान	सुख शांति, सर्वकार्य सफलता	शुभ

भित्ति संलग्न बिम्बश्च पुरुषः सर्वथाऽशुभः।
चित्रमयाश्च नागाद्याभित्तो चैव शुभावहा ॥२०५॥

(द्वादशरत्न,शिल्प रत्नाकर)

दीवाल से स्पर्श कर स्थापित की हुई मूर्ति सर्वथा अशुभ फल देने वाली होती है, किन्तु चित्र बने हुवे नागादि देव दीवाल पर बनाए जाएँ तो शुभ फल देने वाले होते हैं। दीवाल में बने हुवे आले अथवा अलमारी, कपाट आदि में स्थापित की हुई प्रतिमा शुभ फल नहीं देती हैं, अतः घर में माप के अनुसार शुभ आय से सहित वेदी बनाकर प्रतिमा स्थापित करना चाहिए।

स्थिरं न स्थापयेदगेहे ग्रहीणां दुख कृद्धयत् ॥१३०॥

(शिल्प स्मृति वास्तुविद्यायाम्)

गृह चैत्यालय में कभी भी स्थिर प्रतिमा स्थापित नहीं करना चाहिए, यह ग्रहस्थ के लिए दुख का कारण होता है।

गिह देवालं कीरइ दारूमय विमाण पुप्फयं नाम्।
उववीढ पीढ फरिसं जहुत चउरसं तस्सुवरिं।

(वास्तुसार, प्र. ३ गा. ६३)

गृह चैत्यालय में पुष्पक विमान के समान आकार का काष्ठ का मन्दिर बनाना

चाहिए। उस चैत्यालय में पीठ, उपपीठ तथा उस पर समचौरस (वर्गाकार) फर्श बनाना चाहिए। चारों कोणों पर चार स्तम्भ चारों दिशाओं में चार द्वार, चारों ओर तोरण चारों ओर ध्वजा, ऊपर कनेर के पुष्प के सरीखे पाँच शिखर, (चारों कोनों पर चार गुमटी तथा बीच में गुम्बज बनाना चाहिए।

मतान्तर से ग्रह चैत्यालय एक, दो या तीन द्वार का एक ही गुमटी या शिखर वाला भी बनाया जा सकता है।

गर्भ ग्रह से ध्वजा का विस्तार ५:४ या ४ : ३ अथवा ३:२ होना चाहिए। गर्भ गृह के विस्तार से उदय सवाया तथा निगर्भ आधा बनाना चाहिए।

शिखर बंध लकड़ी का मंदिर गृह चैत्यालय में बनाना पूजना या रखना अच्छा नहीं है। किन्तु तीर्थयात्रा के समय मार्ग में जिनबिम्ब दर्शन हेतु साथ में ले जाना उचित है।

गिह देवालय सिहरे धयदंडं नो करिज्जइ कयावि।
आमलसारं कलशं कीरइ इअ भणिय सत्थेहिं।

(वास्तु सार प्र. ३ गा. ६८)

गृह चैत्यालय के ऊपर ध्वजदंड कभी नहीं चढ़ाना चाहिए। किन्तु आमलसार कलश ही करना चाहिए। (चढ़ा सकते हैं)

गृह चैत्यालय की पीठ वास्तु वास्तु की ओर नहीं आना चाहिए यह दोष परिवार को तन, मन, धन तथा जन की हानि कराता है।

गृह चैत्यालय में स्थापित की जाने वाली तीर्थंकर की मूर्ति गृहपति की राशि के अनुकूल होना चाहिए।

दीवाल और छज्जा सहित गृह चैत्यालय ध्वज, वृषभ या गज आय के अनुकूल ही बनाना चाहिए।

आय का ज्ञान और नाम

गिह सामिणो करेणं भित्तिविणा मिणसुवित्थरं दीहं।
गुणि अट्ठेहिं विहत्तं सेस धयाई भवे आया॥
धय, धूम, सीह साणा, विस, खर, गय, धंख आय इमे।
पूव्वाइ-धयाइ ठिई फलंच नामाणु सारेण॥

(वास्तु सार प्र. १ गा. ५१/५२)

चारों तरफ नींव की भूमि को अर्थात् दीवाल करने की भूमि को छोड़कर मध्य में जो लम्बी और चौड़ी भूमि हो उसको गृह स्वामी के हाथ से नापकर जो लम्बाई चौड़ाई आवे उनका आपस में गुणाकार कर क्षेत्रफल निकालें । उसे ८ से भाग देने पर जो शेष आए उसे आय जानना चाहिए।

आय कोष्ठक

शेष	१	२	३	४	५	६	७	८
आय	ध्वज	धूम्र	सिंह	श्वान	वृष	खर	गज	ध्वाँक्ष
दिशा	पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	नैऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान

इनमें विषम अंक वाली आय शुभ तथा समअंक वाली अशुभ है।

गृह चैत्यालय प्रतिमा कैसी हो

प्रतिमा काष्ठ लेपाश्मदन्त, चित्रायसा गृहे,
मानाधिका परिवारहिता नैव पूज्यते ॥१९॥

(शिप्ल रत्नाकर)

काष्ठ, पाषाण, लेप, हाथी दाँत, लौह रंग से चित्रित कर बनाई गयी प्रतिमा तथा ग्यारह अंगुल से बड़ी प्रतिमा अपने गृह चैत्यालय में नहीं रखना चाहिए।

इसके अतिरिक्त बिना परिकर की अर्थात् सिद्धों की प्रतिमा भी गृह चैत्यालय में नहीं रखना चाहिए। मल्लिनाथ, नेमिनाथ, महावीर की प्रतिमाएँ भी गृह चैत्यालय में न रखें, शेष इक्कीस तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ रखे। बालयति होने के कारण अति वैराग्य कर होने से गृह चैत्यालय में नहीं रखना चाहिए।

मल्लि नेमी वीरोगिह भवेण सावएण पूइज्जइ।
इगवीसं तित्थयरा संतिगरा पूइया वन्दे।

(प्रतिष्ठा कल्प. सकलचन्द्रोपध्याय,)

नेमिनाथो वीर मल्लिनाथो वैराग्य कारकः।
त्रयो वै, भवने स्थाप्या न गृहे शुभ दायकाः॥

(वास्तुसार पृ. १८)

जिनबिम्ब प्रतिमा का प्रमाण

अब प्रतिमा बनवाने की विधि:-

सरल, लम्बा, सुन्दर संस्थान युक्त, तरुण, अवस्थाधारी, नग्न यथाजात मुद्राधारी, श्री वस्थ लक्षण करि भूषित हृदय वाला, जानु पर्यन्त लम्बी भुजा सहित १०८ भाग प्रमाण जिनेन्द्र बिम्ब काँख, मुख दाढ़ी के केश रहित बनवाये। श्रेष्ठ धातु, चित्र, पाषाणों की प्रतिमा बनवावे।

अब उसके आंगोपांगों की परिधि तथा ऊँचाई तथा चौड़ाई का यथाक्रम कहते हैं : प्रथम तो जिस प्रमाण का जिन बिम्ब करना हो उस प्रमाण की कागज में उर्द्धरेखा करे या काठ की (काष्ठ) लम्बी चपटी बनावे। उसमें एक सौ आठ प्रमाण रेखाएँ करें। (२) इनमें से २ भाग प्रमाण मुख करे १/४ भाग प्रमाण ग्रीवा करे। (३) ग्रीवा से १२ भाग प्रमाण हृदय करे (४) हृदय से नाभि तक हृदय से नाभि तक १२ भाग प्रमाण उदर करे (५) नाभि लिंग का मूलभाग पर्यन्त १२ भाग प्रमाण पेढू करे। (६)लिंग के मूल से गोड़ा तक २४ भाग प्रमाण पीड़ी करे। (७) जांघ के अन्त में ४ भाग प्रमाण गोड़ा करे (८) गोड़ा के टिकूण्या पर्यन्त २४ भाग प्रमाण पीड़ी करे (९) टिकूण्या से पादतल पर्यन्त ४ भाग प्रमाण एड़ी करे (१०) इसप्रकार १०८ भागों में ९ विभाग करें। ये विभाग मस्तक के केशों से लेकर चरणतल पर्यन्त करे। चरण तल के नीचे आसन रूप चरण चौकी करे। यह ऊँचाई का प्रमाण कायोत्सर्ग प्रतिमा का है। अब इन नव भागों की लंबाई, ऊँचाई, मोटाई और गोलाई का प्रमाण पृथक्-प्रथक करके विशेषतया कहते हैं।

मुख :-

मस्तक के केशों से लेकर ठोडी तक १२ भाग प्रमाण ऊँचा और इतना ही चौड़ा मुख करे। ऊँचाई के तीन भाग करे उनमें से एक भाग अर्थात् ४ भाग प्रमाण ललाट करे। दूसरे भाग में ४ भाग नासिका करे और तीसरे भाग में डाढ़ी तक ४ भाग प्रमाण मुख और टोढ़ी करें। ललाट ८ भाग प्रमाण चौड़ा और ८ भाग ऊँचा करे। ललाट के ऊपर उब्बीश चोटी तक ५ भाग प्रमाण केश करे। उसके ऊपर २ भाग प्रमाण क्रम से चूड़ा उतार रूप में किंचित ५ भाग प्रमाण में लम्बे केश करे इस प्रकार ललाट से लेकर ग्रीवा के पिछले भाग तक १२ भाग प्रमाण में मस्तक करे। मस्तक के उभय

पार्श्वों में ४-४ भाग प्रमाण चौड़े (धनुष के आकार मध्यम में मोटे और दोनों ओर अग्र भाग में कृशशंख नाम के दो हाथ करे। इन दोनों हाथों के मध्य में ४ भाग प्रमाण चौड़ा केश-स्थान करे। इस प्रकार ही १२ भाग प्रमाण ही मस्तक रखे। ललाट के ४ भाग प्रमाण नीचे और ४॥ भाग प्रमाण लम्बे दोनों भँवारे करे। १ एक भाग प्रमाण चौड़ा आदि में ५ भाग चौड़ा अन्त में करें। ३ भाग प्रमाण लम्बी नेत्रों की सफेदी कमल पुष्पदल के समान करे। सफेदी के मध्य में १ भाग प्रमाण श्याम तारा करे। तारा के मध्य १/३ भाग प्रमाण गोल छोटी-श्याम तारिका करे। भृकुटी के मध्य से लेकर नीचे की ओर वाफणी तक ३ भाग प्रमाण आँखों की चौड़ाई करे। नासिका के मूल में २ भाग प्रमाण दोनों नेत्रों का अन्तराल करे। ऊपर नीचे के दोनों होठ २-२ भाग प्रमाण लम्बे और १-१ भाग प्रमाण ऊँचे करे और१-१ भाग प्रमाण दोऊ बगल मिली करे। नासिका के नीचे और ऊपर के होठ के मध्य में १/२ भाग प्रमाण लम्बी और १/३ भाग प्रमाण चौड़ी नाली करे। एक भाग प्रमाण लम्बी तथा १/२ भाग प्रमाण मोटी सृक्किणी करे। २ भाग प्रमाण चौड़ी २ भाग प्रमाण लम्बी ठोड़ी करे। दो भाग प्रमाण मोटा हनू (गाल के ऊपर के समीप का हाड) करे। हनू के मूल से बिंबुक का अन्तराल ८ भाग प्रमाण करे। ४ भाग प्रमाण लम्बे और ३ भाग चौड़े कम करे ४ भाग प्रमाण चौड़ी (कान की मध्यवर्ती कड़ी नस के आगे परनाली के रूप खाल) करे। पास के ऊपर की वर्तिका (गोट) १/४ भाग प्रमाण नेत्र की और कर्णो का अन्तराल करे आगे से दोनों कर्णो का अन्तराल १८ भाग प्रमाण करे और पीछे से दोनों कर्णो का अन्तराल १४ भाग प्रमाण होगा। इसप्रकार कर्णो के समीप में मस्तक की परिधि ३२ भाग प्रमाण होनी चाहिए और ऊपर में मस्तक की।

हाथ :-

कोहनी का विस्तार ५/१/३ भाग प्रमाण करे। कोहनी से पौंवा तक चूड़ा उतार बाहू करे। भुजा का मध्य भाग ४/२/३ भाग प्रमाण और परिधि १४ भाग प्रमाण करे पौंवों का विस्तार ४ भाग और उसकी परिधि १२ भाग प्रमाण करे। पौवे से मध्य पर्यन्त १२ भाग प्रमाण करे। मध्यमागुंलि ५ भाग प्रमाण, मध्यमागुंलि के अर्ध-अर्ध पर्वहीन, तर्जनी अनामिकागुंलि से १ पर्वहीन, कनिष्ठिकागुंलि पौवे से लेकर कनिष्टिका के मूल तक ५ भाग प्रमाण, अनामिका करे, अन्तराल करे। तर्जनी तथा मध्यमा के प्रमाण से बलि की मोटाई अर्ध भाग प्रमाण घाटि करे। अंगुष्ट में करे अगुंष्ट की परिधि चार भाग प्रमाण करे। शेष अंगुलियों में ४-४ पर्व करे। अर्ध पर्व समान पाँचों ही अंगुलियां में

नख करे। हथेली ७ हाथ प्रमाण लम्बी भाग, प्रमाण चोड़ी करे। हथेली की मध्य परिधि १२ भाग प्रमाण करे। अंगुष्ठ मूल और तर्जनी के मूल का अन्तराल २ भाग प्रमाण करे। भुजा गोल सन्धि जोड़ से मिली गोड़ा तक करे। अंगुलियों को मिलाप युक्त स्निग्ध ललित उपचय संयुक्त शंख चक्र सूर्य कमलादि उत्तम चिन्हों कसे युक्त करे।

वक्षस्थल :-

२४ भाग चौड़ा व स्थल करे पीठ वक्ष स्थल की परिधि ५६ भाग प्रमाण करे वक्ष स्थल में श्री वत्स का चिन्ह ही दोनों स्तनों का मध्यांतवाल १२ प्रमाण, दो स्तनों की चूचियाँ २ भाग प्रमाण वृत्ताकार चूचियों के मध्य में १/४ भाग प्रमाण बटिलियाँ हों। वक्षस्थल से नाभि तक १२ भाग प्रमाण अन्तराल हो ।

उदर :-

वक्षस्थल के नीचे और नाभि के ऊपर को उदर कहते हैं। नाभि का मुख १ भाग प्रमाण चौड़ा हो। नाभि को दक्षिणा वक्षरूप से मनोहर गोल गहरी करे।

पेडू :-

नाभि के मध्य से लेकर लिंग के मूल तक भाग प्रमाण में अन्तराल पेडू करे उनमें आठ भागों परिधि ४८ भाग प्रमाण करे। तिकूणा (बैठक का हाड़) आठ भाग प्रमाण विस्तीर्ण हो। तिकूणा का मध्य भाग ८ भाग प्रमाण हो। ऊपर का भाग अनीद्दट वांसा के हाड़ से मिला हो। दोनों कूले ६ भाग प्रमाण गोल हो। स्कंध का सूत से गुदा पर्यन्त २६ भाग लम्बा और आधा भाग प्रमाण मोच रीड़ का हाड़ हो।

लिंग :-

४ भाग प्रमाण लम्बा मूल में दो भाग प्रमाण मोटा, मध्य में १ भाग प्रमाण मोटा अन्त में एक भाग प्रमाण मोटा लिंग हो। सर्वत्र अपनी मोटाई के प्रमाण से तिगुनी परिधि हो।

पोते :-

दोनों पोतों को आम की गुठली के समान चढ़ाव उतार रूप में ५-५ प्रमाण लम्बे और ४-४ भाग चौड़े पुष्ट रूप में बनावे।

जाँघ :-

दोनों जाँघ को ४-४ भाग प्रमाण पुष्ट रूप में बनावे। दोनों जाँघ को मूल में ६-६ भाग प्रमाण चौड़ी रखें। इसकी परिधि सर्वत्र अपनी-अपनी मोटाई से तिगुनी रखे।

घुटना :-

जाँघ के नीचे पीड़ियों के ऊपर मध्य में ६ भाग प्रमाण लम्बे दोनों घुटने रखें।

पीड़ी :-

घुटनों के नीचे टिकूण्या तक लम्बी २४-२४ भाग प्रमाण पीड़ियाँ बनावें। ये दोनों पीड़ियाँ मूल में ६-६ भाग प्रमाण, मध्य में ६-६ भाग प्रमाण और अन्त में टिकूण्या के पास ४-४ भाग चौड़ी रखें। परिधि सर्वत्र तिगुनी हो।

टिकूण्या :-

दोनों पगों की चारों टिकूण्या में १-१ भाग प्रमाण गुढ़ रखें। इनकी परिधि भी तिगुनी हो । लक्षण निकरि युक्त भी प्रतिबिम्बादि दृष्टि और करि रहित हो अर्थात् शोभनीक न हो तो दृष्टि को प्रकाशन करवावे। सो न अत्यन्त ऊपर करे। अर्धोन्मीलित शान्तरूप नासिका की अनी पर दृष्टि पड़ती निर्विकार मध्यरूप करे। तिरछी या नीची न करवावे। जो दृष्टि तिरछी हो तो पुत्र नाश, ऊँची हो तो भार्यानाश। स्तब्ध कहिये गुम्म दृष्टि होय तो धन नाश हो, शान्त दृष्टि हो तो सौभाग्य पुत्र अर्थ शान्ति होय। जो प्रतिमा रौद्ररूप होय जो राजा का नाश, दुर्बल अंगयुक्त होय तो द्रव्य नाश, संक्षिप्तांगी होय अर्थात् सूक्ष्म अंग की धारक होय तो क्षय करती है। चपटे मुख की होय तो दु:खदाता होय, नेत्र रहित होय तो विध्वंस करे। छोटे मुख की होय तो अशोभित होय। बड़े उदर की होय तो उदर रोग करे। कृश हृदय की होय तो हृदय रोग करे। स्कंधहीन होय तो पुत्र को हनै। शुष्क जंघा होय तो नरेन्द्र को हनै। अगर हीन होय तो प्रजा को हनै । कटि हीन होय तो बाहनो को हनै इसप्रकार से दोषों से रहित प्रतिमा बनवानी चाहिए।

अथबिंबै जिनेन्द्रस्य कर्त्तव्यं लक्षणान्वितम्
ज्वायतसु संस्थानं तरूणांग दिगंबरं।

अर्थ :- अब जिनेन्द्र बिंब को विलंब क्षणानुसार करना चाहिए। तरूण रूप हो और दिगम्बर होवे एवं अच्छे संस्थान वाला हो।

श्री वृक्ष भूषितोरस्कं जानुप्राप्त करागजं।
निजांगलु प्रमाणेन साष्टांगुल शतायुतम्॥
मानं प्रमाण मुन्मानं चित्रलेप शिलादिषु।
प्रत्यंग परिमाणा होर्द्ध यथासंख्य मुदीरितम् ॥

अर्थ :-श्री जिनप्रतिमा का उरस्थल श्री वृक्षचिन्ह से अंकित हो, घुटने पर्यन्त

भुजाएँ लम्बी होना ऊँचाई में कायोत्सर्ग प्रतिमा अपने अंगुल से १०८ अंगुल प्रमाण हो। चित्रलेप व शिलादि में बनाई जाने वाली प्रतिमाओं का मान (प्रस्थादि) प्रमाण (अंगुलादि माप) एवं उन्मान (तुलादि से माप) के द्वारा प्रत्येक आङ्गोपाङ्ग का माप विस्तारादि कितना-कितना होना चाहिए यह आगे यथा संख्या क्रमानुसार कहा गया है।

कक्षा दिरोमहीनोगंश्म श्रुलेखा विवर्जितम्
ऊर्द्ध प्रलंवकंदत्वा समाप्पं तं च धारयेत्
तालं मुखं वितस्तिः स्यादेकार्थं द्वादशांगुलम्
तेनमानेनतद्विंबं नवधापरि कल्पयेत्।

अर्थ :- कक्षादि (कांख गुह्य-लिंग के पास का स्थान) अङ्गरोम (केश) रहित बनाना चाहिए। मूँछ, दाढ़ी के स्थान भी केशादि चिन्ह रहित हो कायोत्सर्ग (खड्गासन) मुद्रा में हों। एक ताल में बाहर रेखाएँ होती हैं। (९ ताल की प्रतिमा में १०८ रेखाएँ खींचकर उसी माप से प्रतिमा बनाई जाती है।) ताल प्रमाण या १२ अंगुल प्रमाण विस्तृत-गोलाकार मुख बनाना चाहिए। उसी प्रमाण से उस बिम्ब को नव ताल का समझें मानें।

तालमात्रं मुखंतभूगी वाग्रश्च तुरंगुला
कठोतहद्वयं यावदंतरं द्वादशांगुलम्
तालमात्रं ततोनाभिर्नाभि मेढातरं गमुखम्।
मेढ् जान्वंतरंतङ्गै मात्र प्रकीर्त्तितम्।

अर्थ :- मुख का प्रमाण १२ अंगुल, ठोडी चार अंगुल, ग्रीवा भी चार अंगुल, कण्ठ से हृदय पर्यन्त बारह अंगुल प्रमाण होना चाहिए। हृदय से नाभि ताल प्रमाण (१२ अंगुल) नाभि से लिंग मूल पर्यन्त बारह भाग (अंगुल) प्रमाण हो ऐसा अन्तर के ज्ञाताओं द्वारा कहा गया है।

वेदांगुलं भवेज्जानु जानुं गुल्फांतरंकरः
वेदांगुलं समाख्यातं गुल्फपाद तलां तरम्।
द्वादशांगुल विस्तीर्ण मायतं द्वादशांगुलम्
मुखं कुर्यात्स्व केशांतं त्रिधातच्च यथा क्रमम्।

अर्थ :- वेद (चार) अर्थात् चार अंगुल प्रमाण जानु (घुटना) हो। जानु से टखना

पर्यन्त एक हाथ का अन्तर रहे। गुल्फ (टखना से) चार अंगुल प्रमाण पाद-पाँव का तलभाग का अन्तर हो। अब मुख भाग जो १२ अंगुल लम्बा है उसके मुख से केश पर्यन्त क्रमशः यथायोग्य तीन भाग करे।

वेदांगुलायतं कुर्याऽललाटं नासिकामुखम्।
घोणारंध्रयत्राष्टार्द्धं घोणापाली चतुर्यवा।
किंचित्निनम्नोन्नतं कुर्यादग्रकोटिं च नामयेत्।
तिर्यगष्टांगुलायाम् भालमद्धिंडसन्निभम्।

अर्थ :- वेद प्रमाण अर्थात् चार अंगुल प्रमाण ललाट की रचना करे नाशिका भी चार अंगुल प्रमाण, मुख (आठ) जौ प्रकार बनावे। जौ प्रमाण नासिका की पाली का प्रमाण चार जौ प्रमाण जानना चाहिए अर्थात् नासिका विवर विस्तार चार अंगुल समझना चाहिए । मस्तक को कुछ नम्र और उन्नत करे। अग्रभाग को कुछ नमावे। ललाट को तिर्यक् रूप आठ अंगुल दोनों ओर कुछ नम्र अष्टमी के चन्द्रमा के समान बनावे अर्थात् अर्ध चन्द्राकार बनाना चाहिए।

केशस्थान जिनेन्द्रस्य प्रोक्तं पंचागुलायतं
उष्णीषं चततोज्ञेय मंगुल द्वय मुन्नतम्।
संखोवेदांगुलायामौ भूतले चतुरंगुले
मध्यस्थूले कृशाग्रे च स्वारोपित धनुर्निभे

अर्थ :- ललाट के ऊपर केशों का स्थान जिनेन्द्र भगवान के केशों का स्थान भाग पाँच अंगुल लम्बा होना चाहिए। भौंह का प्रमाण दो अंगुल उन्नत होना, चार अंगुल प्रमाण भंवरों की लम्बाई होना, मध्य में स्थूल, अन्त में कृश, आरोपित, धनुपाकार होना अर्थात् धनुष के समान भौंहे होना चाहिए इसप्रकार भौहों की रचना करे।

पादांगुलं प्रविस्तीर्ण सार्द्धांगुल मिथोत्तरम्।
भ्रू चापमध्य केशांत स्यांतरंद्वय गुलंमतम्।
करवीर युतायामस्यंगुलो नेत्रयो र्भवेत्।
केवलोद्वयगुलः कुर्यान्नेत्रेपद्मदलाकृती
नेत्रमध्येगुलं व्यासस्त्रिभागः कृष्ण तारिका
नेत्राधः पक्ष्मणीयावद्भ्रूमध्यत्र्यंगुलंमतम्।

अर्थ :- नेत्रों का विस्तार दो अंगुल प्रमाण उत्तर भाग अर्थात् श्वेतभाग भी दो अंगुल बनाना, पुनः काली कनीनिका उससे आधी एक अंगुल प्रमाण होना। दोनों भौहों के मध्य का केशपर्यन्त दो अंगुल मात्र रहना चाहिए ऐसा माना है नेत्रों का विस्तार तीन अंगुल प्रमाण माना है। अर्थात् दो अंगुल प्रमाण नेत्र रचना पद्मदल कमलदल के आकार की करना चाहिए । नेत्र के मध्य का व्यास जितना है उसके तीन भाग कर एक भाग काली तारिका बनायें । नीचे की पपनी से भौंह के मध्य पर्यन्त तीन अंगुल चौड़ाई होनी चाहिए।

अंतरं नाशिका मूले नेत्रयोर्द्धांगुलमतम् ।
उत्तरोष्ठोपितावांस्तुतथैकांगुल मुच्छितः॥
मुखसाविवरंतिर्यग्दिष्टं चतुरंगुलम् ।
अर्द्धांगुलायतागो जी त्रिभाँगुल विस्तृता ॥

अर्थ :- मूल भाग में नासिका (नाक) के नेत्रों का अन्तर अर्द्ध अंगुल माना है। ऊपर का ओष्ठ प्रमाण भी उतना ही समझना (ऊँचाई अर्थात् ओठ की मोटाई एक अंगुल प्रमाण मानी है) मुख का विवर छिद्र विस्तार चार अंगुल प्रमाण कहा है। आधा अंगुल प्रमाण दोनों ओठों का अन्तर मध्य में त्रिभाग तीन अंगुल विस्तृत होगा।

एकांगुलप्रवेस्तीण स्तथैकांगुल मुच्छितः
आयतीद्वयंगुलं तज्ज्ञैरधरः परिकीर्तितः
सृक्किणी चांगुलायामा वज्ञेयार्द्धांगुलंपृथुः
चिवुकंद्यंगुल ज्ञेयं विस्तारायामतस्तथा

अर्थ:- ओष्ठ के चार भागों में एक भाग एक अंगुल प्रमाण प्रवेशद्वार, उसीप्रकार एक अंगुल ऊँचाई तथा दो अंगुल की लंबाई (आयत) इसप्रकार ओठ विज्ञान के ज्ञाता वर्णन करते हैं। ओष्ठ की अन्तस्थिति नामक सृक्किणी एक अंगुल एवं आधा अंगुल मोटी हो। चिबुक ठोडी दो अंगुल प्रमाण तथा इतना ही ठोडी का विस्तार और लम्बाई भी जानना चाहिए।

अंतरं हनुमूलात्स्याच्चिवुकस्यांगुलाष्टकं
हनुद्रस्य विस्तारो द्वयंगुलंस्यात्पृथक् पृथक्

द्वयंगुलं च पृथक्त्वेन दीर्घत्वं चतुरंगुलम्।
कर्णयोर्लंबितौ पाशावंगुलानां चतुष्टयम्

अर्थ :- हनु ठोडी के मध्य अग्र भाग से चिबुक (ठोडी) का प्रमाण ८ अंगुल हैं। दोनों और का विस्तार अलग-अलग दो-दो अंगुल रहना, इसप्रकार दोनों ओर दो-दो अंगुल रखने से दीर्घपना (लम्बाई) चार अंगुल प्रमाण होगी। दोनों कानों के पार्श्व (किनारे के) की लम्बाई चार अंगुल प्रमाण कही है।

अर्द्धांगुलंप्रविस्तीर्णो कुर्याच्छो भान्वि तौशुभौ
कर्णपूरोगुलार्द्धस्यात् पादंकर्णोर्द्धवर्तिका
कर्णशष्कुलिकारं धमर्द्धांगुलमुदीरितम्।
कर्णनेत्रांतरं सार्द्धमंगलानां चतुष्टयम्।

अर्थ :- लम्बाई से आधा अर्थात् दो अङ्गुल विस्तार चौथाई करना (कर्ण) दोनों कान शुभ और सुन्दरता से युक्त करे। कर्ण के मध्य छिद्र में यवनाली आधे अङ्गुल प्रमाण होगी। कर्णपूर (कान की पाली) आधा अङ्गुल उससे ऊपर का भाग-पाद चार अङ्गुल प्रमाण होगी। कान का आकार शष्कुली-पूरी के समान कहा है। छिद्र आधा अङ्गुल प्रमाण कहा है। कर्ण नेत्रों के मध्य का अन्तर साढे चार अंङ्गुल होना चाहिए।

उच्छयस्यसमत्वेन कर्ण वर्तिनिवोजपेत्
तथा नेत्रांत तुल्येन कर्ण पूरौ सरंघ्रकौ
करवीर समकुर्यान्नासापुटनि वंधनम्
तस्यपर्यन्त तुल्येन तारिके विनियोजयेत्
अष्टादशांगुलं ज्ञेयं कर्णयोः पूर्व्वमंतरम्
चतुर्दशापरे भागे द्वात्रिंशन्मिलितं भवेत्
शिरसः परिणाहोयं द्वादशांगुलः
विस्तारः कूर्प्परस्योक्तः सन्नपंशांगुल पंचकं।

अर्थ :- दोनों कर्ण समेत वामित्ति के अर्थात् गण्डस्थल का अठारह अंगुल प्रमाण अन्तर जानना और ऊपर भाग पिछले भाग का अन्तर चौदह अंगुल है। इसप्रकार दोनों का प्रमाण मिलकर १८+१४= ३२ अंगुल हुआ। ऊपर मस्तक की परिधि तालुरन्ध्र पर्यन्त १२ अंगुल है कपाल का प्रमाण ५ अंगुल प्रमाण रचना करे।

परिणाहः पुनस्तस्यविज्ञेयः षोडशांगुलः
कुर्यात्कूर्प्परतोहानिं मणिवंद्यावधिकमात्
पंचागुलं त्रिभागोनं प्रवाहोर्मध्यविस्तरः
परिणाहो भक्तेस्य ऽवंगुलानिचतुर्दश

अर्थ :- उस कपाल की परिधि १६ अंगुल जानना चाहिए, परंतु कूर्प्पर से लेकर क्रमशः मणिबन्ध पर्यन्त कम-कम करना चाहिए। तथा बाहु का मध्य विस्तार तीन भाग कम पाँच अङ्गुल प्रमाण होना एवं उसकी परिधि चौदह अंङ्गुल प्रमाण जानना चाहिए।

मणिबंधस्यविस्तारो विज्ञेयश्चतुरंगुलः
परिणाहः पुनस्तस्यकीर्तितोद्वादशांगुल
तस्यमध्यं गुलाग्रह्य, चांतरं द्वादशांगुलम्
अंगुलीमध्यमाहस्तेज्ञेया पंचागुलायता

अर्थः- मणिबन्ध-पौंचा का विस्तार (चौड़ाई) चार अंगुल प्रमाण जानना और उसकी परिणाह परिधि पुनः १२ (बारह) अङ्गुल प्रमाण कही गई है मध्य अंगुली से अग्रभाग का अन्तर बारह अंगुल प्रमाण है (हथेली और मणिबन्ध के मध्य मध्यमा बीच की (अंगुली) का प्रमाण लम्बाई पाँच अङ्गुल प्रमाण जानना चाहिए।

अनामिकापितत्रेव हीनामध्यार्द्धपर्व्वणा
अनामिका समाकार्यस्वायामेनप्रदेशिनी
कनीयस्यापिविज्ञेयापर्व्वं हीनात्वनामिका
मणिबंधात्कानिष्ठाया मूलं पंचागुलं भवेत्

अर्थ :- अंगुली मध्यमा के पास वाली अनामिका मध्यमा से आधा पर्व कम छोटी बनाना चाहिए। अनामिका के समान प्रमाण वाली ही प्रदेशिनी (अंगुठा के पास उंगुली) बनाना चाहिए। अनामिका से एक पर्व्व कम कनिष्ठा (सबसे छोटी) अँगुली जानना चाहिए अर्थात् बनाना चाहिए अर्थात् मणिबन्ध से कनिष्ठा के मूलभाग पर्यन्त पाँच अंगुल प्रमाण हाथ का प्रमाण होना चाहिए अर्थात् मणिबन्ध से कनिष्ठा के मूल भाग तक का अन्तर ५ अङ्गुल समझना चाहिए।

तर्जनी मध्यमा नामतोर्द्धांगुलामता
कनिष्ठिकाविशेषोन त्रिगुणापरिणाहतः

आयामतोर्विनिर्दिष्टा वं गुष्ठौ चत्तुरंगुलौ
विस्तारेण समाख्यातैसाधिकं चंकमंगुलम्।

अर्थ :- तर्जनी और मध्यमा का प्रमाण आधा अंगुल कम माना है। कनिष्ठा विशेष कम है। लम्बाई से दोनों अंगुष्ठों का प्रमाण चार अङ्गुल निर्देश किया है तथा कुछ अधिक एक अङ्गुल छोटा होना चाहिए।

अंगुष्ठकोद्विपर्व्व स्याद्वेष्टनं चतरंगुलम्।
समांसलाः प्रक्र्त्तव्या शेषांगुल्य स्त्रिपार्व्विकाः
तासांपर्व्वार्द्धमानेन नखमानं प्रकीत्तितं
आत्मीयांगुलमानेनविज्ञेयाः समपर्व्विकाः।

अर्थ :- अगुंष्ठ में दो ही पर्व बनाना चाहिए। वेष्टन चार अंगुल का और पुष्ट बनाना चाहिए शेष सभी अंगुलियाँ तीन तीन पर्व की बनाना चाहिए। नख का प्रमाण पर्व (पोरी) से आधा प्रमाण कहा गया है । इन पोरी (पर्व) आदि का प्रमाण आत्माङ्गुल (अपने-अपने अङ्गुल) प्रमाण से जानना चाहिए।

सप्तांगुलायतं हस्त तलं पंचैवविस्तृतम्।
तत्रैव च परिक्षेपो विज्ञेयो द्वादशांगुलः॥
अंगुष्टक प्रदेशिन्यो रं तरं द्वयंगुलं भवेत्
बाहुदंडौ च गोपुच्छौ वृत्तां सौ लीन संधिकौ

अर्थ :- हाथ का तल भाग (हथेली) सात अङ्गुल लम्बी और पाँच अंङ्गुल चौड़ी और वहीं परिक्षेप घेरा १२ अंगुल प्रमाण होता है।

अंगूठा (अगुष्ठ) और प्रदेशिनी का अन्तर दो अंगुल प्रमाण है। दोनों भुजाएँ गाय की पूंछ समान गोल पुष्ट कन्धों के यहाँ से नीचे की ओर लटकती हुई संधियुक्त हों।

करौ करि करा करौ प्रलंवौ जानुसंग तौ
नातिनिम्नौवचोत्तानौनिच्छिद्रौमांस लौसमौ
सुश्लिष्टांगुलिकौसिनग्धौ लालित्योपचयान्वितौ
शंखाचक्राक्कपद्मादिसल्लक्षण समन्वितौ

वे भुजाएँ (दोनों) हाथी की सूंड के समान जानू घुटने पर्यन्त लटकती हुई हों। भुजाएँ अति झुकी भी नहीं हों और न अधिक उठी ही हों । छिद्र रहित हों, मांसल

पुष्ट वारत्व की द्योतक अंगुलियों से सम्बन्धित हों एवं चिकनी ललित सुन्दता से अनुपम हो, तथा शंख चक्र, कमल, सूर्य आदि के चिन्हों से लाञ्छित युक्त हों अर्थात् भुजाओं पर शंख, चक्र, सूर्य, कमल बनें हों।

वितस्तिद्वयविस्तीर्ण पुरः श्री वत्सलक्षितम्
पृष्टेरः परिणाहः स्यात्सषढा चा शदंगुलः
स्तनांतरं वितस्तिः स्याद्वांगुलौस्तन चूचकौ
चूच्चयोरुन्वितौकिं चिद्विंदू पादांगुलप्रभौ

अर्थ :- तथा पुरः वक्षस्थल दो विलस्त प्रमाण चौड़ा श्री वत्स चिन्ह से चिहिन्त होवे, अर्थात् २४ अंगुल प्रमाण हो। वक्षस्थल की पीठिका की चौड़ाई ५६ अङ्गुल प्रमाण हो । एक स्तन से दूसरे स्तन का अन्तर एक विल्सत अर्थात् बारह अंगुल होना चाहिए। यह अन्तर कुचन के अग्रभाग तक होना चाहिए। दोनों स्तनों का मध्यभाग कुछ ऊँचा उठा हुआ हो और मध्य में बिन्दु चौथाई अंगुल प्रमाण लम्बे चौड़े गोल रहने चाहिए।

मुखरं धागुलव्यासां शंख नाभि समाकृतिं
गभीरां दक्षिणावर्त्ता कुर्यान्नाभिं मनोहराम
नाभिमंडलमध्यस्य मेढामूलस्य चांतरं
अष्टांगुलं समुदिष्टं रेखाष्टकं मनोहरम्

अर्थ :- मुख का छिद्र एक अंगुल प्रमाण व्यास वाला हो। नाभि शंख की आकृति के समान हो गहरी और दक्षिण की ओर आवर्त (घेरा) वाली। सुमनोहार आकर्षक बनावे । नाभि मंडल के मध्य भाग से आठ अंगुल नीचे छोड़कर लिङ्ग होना चाहिए। अर्थात् नाभि के मध्य से लिङ्ग के मूल भाग तक का अन्तर आठ अंगुल होना चाहिए यह भाग आठ रेखाओं से युक्त सुन्दर होना चाहिए।

अष्टादशांगुला तत्र विस्तरेणकटिर्भवेत्
हस्तद्वयं च संपूर्ण तस्या स्यात्परि वेष्टनम्
स्फिगष्टांगुलविस्तीर्ण त्रिकमुच्चोश्चनाहतः
कुकुदरौ नितंवस्थौ व्यावर्त्तौषडंगुलौ

नाभि और लिङ्ग के मध्य कटि भाग अठारह अंगुल प्रमाण होती है। उस कटि कमर की परिधि दो हाथ प्रमाण चारों और से वेष्टित होना चाहिए तथा स्फिग पेडू (लिंग के ऊपर का भाग) आठ अंगुल चौड़ा हो, उसमें तीन अनाहत रेखाएँ हों अर्थात् रेखा चिन्ह हों। गुह्य स्थान के दोनों ओर नितम्बों का प्रमाण गोलाकार ६-६ अंगुल प्रमाण होना चाहिए।

(कुकुन्दाकार का अर्थ बालू के ढेर का आकार बताया है।)

स्कंधरादंतरंयावडु दंषट् त्रिशंदं गुलम्
दीर्घः पृष्टास्थि वंशश्च विस्तृतः सार्द्धमंगुलम्
द्वयंगुलोमेढ़विस्तारो मूलेमध्ये गुलं भवेत्
अग्रेगुल चर्तुर्भागोव्यासात्राहस्त्रिसंगुणः

अर्थः- स्कन्ध कांधा से लेकर अपान का प्रदेश पर्यन्त का अन्तर छत्तीस (३६) अंगुल का जानना। पृष्ठ-पीठ की ओर से यह अन्तर लेना। पीठ की रीढ की हड्डी अर्द्धा अगुंल चौड़ी होना चाहिए। लिङ्ग का विस्तार कुछ अधिक दो अंगुल होना चाहिए। मूल और मध्य में एक अंगुल मोटा हो और अन्त में सवा अंगुल विस्तृत हो इसका व्यास परिधि तीन गुनी होना श्रेष्ठ है।

समांसलौसमौकार्यौ पौतोपंचा गुलायतौ
आम्रास्थिसन्निभौ युक्तौ विस्तृतौ चतुरंगुलौ
वितस्तिद्वित्तयायामुरू युग्मंस मांसलं
एकादश प्रविस्तीर्ण मूलेमध्ये नवांगुलम

अर्थ :- पोतों का आकार आम की गुठली के समान होना चाहिए। दोनों और पोते पुष्ट समान और पाँच अंगुल प्रमाण लम्बाई के बनाना तथा चार अंगुल चौड़ाई वाले बनाना चाहिए। जंघाएँ दोनों दो विलस्त अर्थात् चौबीस अंगुल प्रमाण लम्बी एवं गोल पुष्टं सुन्दर होनी चाहिए। इनका विस्तार चौड़ाई ग्यारह अंगुल मूल और मध्य में नव (९) अंगुल प्रमाण बताया है।

सप्त जानुद्वयेनाहः स्त्रक व्यासस्त्रि संगुणः
गूढे वृत्तेसु संश्लिष्टे मांसले जानु नीसमे

ततो जंघा द्वयं वृत्तवितस्तिद्वितयायतम्
जंघायाः पिंडिकामध्ये विस्तारः स्याऽषडंगुलः

अर्थ :- दोनों घुटने सात अंगुल प्रमाण चौडे लम्बे उनकी परिधि तीन गुनी २१ अंगुल कही हैं। ये गूढ-पुष्ट, गोल, माँसल और जंघा ये संश्लिष्ट होते हैं। जंघाओं के बाद गोलाकार दो विलस्त चौबीस अंगुल प्रमाण लम्बे पिंडली भाग रूप पैर होना चाहिए। जंघा और पिंडली के मध्य का विस्तार छः अंगुल होना।

पंचागुलस्त्रि भागो नो गुल्प देशे च विस्तरः
उभयोः परिधीज्ञेयो स्वविस्तरा त्रिसंगुणौ
अंगुलं गुल्प विस्तार स्त्रंगुलः परिधि र्भवेत्
पादौ चतुर्दशायामौ गूढगुल्फौसुलक्षणौ

अर्थः- गुल्फ टिकुना (टखना) तीन भाग कम पाँच अंगुल प्रमाण होना। यह विस्तार प्रमाण है। परिधि का प्रमाण इससे तीन गुना अर्थात् कुछ कम १५ अंगुल समझना। टखना का विस्तार (चौड़ाई) एक अंगुल और उसकी परिधि (घेरा) तीन अंगुल हों। पाद-चरण की लम्बाई चौदह (१४) अंगुल हो, चरण पुष्ट भरे सुन्दर हो टखना रूपी सुलक्षण से युक्त हों अर्थात् चरण पर सुन्दर लक्षण अंकित हो।

गुल्फादंगुष्टकाग्रं च विज्ञेयं द्वादशांगुलम्
गुल्फयोः पश्चिमे भागे द्वयंगुलापार्ष्णिका भवेत्
तलंनिम्नोन्नतं तस्या द्वयंगुलं विस्तृतंमतम्
कार्यं समांसलं तस्य परिणाहः षडंगुलः

अर्थ :- टकना से पैर का अंगुष्ठ का अग्रभाग पर्यंत अन्तर बारह अंगुल प्रमाण होना चाहिए। टकना से पीछे भाग में दो अंगुल प्रमाण की एडी होवे। एडी का तल नीचा उन्नत उठा हुआ दो अंगुल प्रमाण विस्तार वाला होना माना है। उसकी परिधि छह अंगुल प्रमाण हो यह भी पुष्ट एवं सुडौल करना चाहिए।

अंगुष्ट स्त्रयंगुलाया मस्तावतीच प्रदेशिनी।
षोडशाष्टाष्ट भागेन शेषाहीना स्त्वनुक्रमात् ॥
अंगुलद्वितयं मध्ये, विस्तारों गुष्ट कस्य च।
मूले ग्रेन्यूनकः किंचिच्छेषांगुल्फोंगुलप्रभा॥

अर्थ :- पैर का अंगुठा तीन अंगुल लम्बा, इतना ही तीन अंगुल प्रमाण हो प्रदेशिनी (अंगुष्ठ के पास वाली) उंगली बनावे। पुनः क्रमशः अंगुल का सौलहवां भाग, आठ भाग-आठ भाग कम कम शेष उंगुलियों को बनाना चाहिए। द्वितीय उंगली और अंगूटे का मध्य का विस्तार अन्तर या चौडाई एक अंगुल प्रमाण हो।

सर्व्वासांत्रि गुणो नाहो यथाशोभं निरूपयेत्।
पर्व्वद्वितयमंगुष्ठे शेषागुल्य स्त्रिपर्विकाः॥
अंगुलं नख मंगुष्ठे शेषाणं तहुल प्रमं।
किचिन्यूनं कनिष्ठांत मुत्ररोत्रर मीरितम ॥

अर्थ :- शेष सभी का तीन भाग करे एवं यथायोग्य सुन्दर बनावे। अंगुष्ट में दो पर्व बनावे, तथा शेष अंगुलियों में तीन पर्व बनावे। अंगुठे का नख एक अंगुल का बनावे, शेष उंगुलियों का नख उसका आधा प्रमाण बनाना, किन्तु कनिष्ठा का नख उससे कुछ न्यूनकम बनावे, इसप्रकार उत्तरोत्तर क्रम कहाँ गया है।

तले पादस्य विस्तारः पाष्णयाः स्याच्चतुरंगुलः
मध्ये पंचागुल स्तस्य पादस्यांते षडंगुलः
पादयुग्मं सुसंश्लिष्टकार्य निच्छिद्र सुस्थितम् (च्छि)
शंखचक्रां कुशां भोजय व छत्राय लं कृतम्

अर्थ :- पाव की पगतली का प्रथम भाग चार अंगुल चौडा, मध्य में पाँच अंगुल चौडाई और अन्त में छह अंगुल प्रमाण विस्तार हो। दोनों चरण सुसंश्लिष्ट छिद्र रहित सुव्यस्थित सुडौल, शंख चक्र, अंकुश, कमल जो छत्रादि चिन्हों से अलंकृत होना चाहिए।

ऊज्वायतस्य रूपस्यत्वष मार्गो निरूषितः
शेषस्थान विकल्पेणु यथाशोभं विकल्पयेत्
कायोत्सर्ग स्थितस्यैव लक्षणं भाषितवुधेः
पर्यकस्थस्य चाप्येवं किन्तुकिंचिद्वि शिष्यते

अर्थ :- उपर्युक्त प्रमाण सरल सीधी कायोत्सर्ग प्रतिमा का निरूपित किया इससे भिन्न स्थानों का भी यथायोग्य शोभनीय कल्पना कर रचना करे। विद्वानों द्वारा कायोत्सर्गबिम्ब के लक्षण कहे गये पद्मासन या पर्यंकासन प्रतिमा के विषय में कुछ विशेषता है।

ऊर्द्धतस्तस्य मानार्द्ध मुत्सेधंपरि कल्पयेत्
पर्यंकमपि तावंतं तिर्यगायाम् संस्थितम्
बाहुयुग्मांत सद्वेशे भासयेच्च तुरंगुलं
प्रकोष्ठात्कूर्प्यरं यावद्वयंगुलं वर्द्धयेत सदा

अर्थ :- पद्मासन बिम्ब की ऊँचाई जितनी है उससे मोटाई आधी प्रमाण हो आसन भी उतना ही प्रमाण तथा तिर्यंक आयाम की लम्बाई भी उसी प्रमाणानुसार होना चाहिए। दोनों भुजाओं का अपना पखवाडा का चार अंगुल प्रमाण अन्तर होना। हाथ के पोंहचा (प्रकोष्ठ) से कोहनी पर्यन्त दो ही अंगुल सदा बढ़ता हुआ हो।

प्रातिहार्यष्ट कोपेतं संपूर्णवयवं शुभम्
भावरूपानु विद्धागं कारयेद्बिबं मर्हतः

अर्थ :- अष्ट प्रातिहार्य से सहित संपूर्ण अवयव से सहित शुभ भाव रूप ही अर्हन्त भगवान का बिम्ब (मूर्ति) होता है

प्रातिहार्यैविना शुद्धंसिद्ध बिम्ब मपी दृशं
सूरीणां पाठकाना च साधूनां च यथागमम्

अर्थ :- सिद्ध भगवान की मूर्ति अष्ट प्रातिहार्य से रहित होना चाहिए और आचार्य, उपाध्याय, साधु की मूर्ति भी उनके रूपानुसार बनावे।

विशेष :- सिद्ध भगवान की मूर्ति अष्ट प्रातिहार्य से मात्र रहित हो किन्तु बनावे वैसी ही वर्तमान में जो सिद्ध मूर्ति मात्र पीतल को मनुष्याकार काट कर बना देते हैं यह आगमोक्त नहीं है। कल्पना मात्र है। आगम की आज्ञा तो मात्र अष्ट प्रातिहार्य रहित सिद्ध मूर्ति और अष्ट प्रातिहार्य सहित अर्हन्त मूर्ति होती है। चाहे तो गुरू भक्ति करने वालों की आचार्य, उपाध्याय, सर्व साधु की मूर्ति भी बना सकते हैं; आगम से कोई दोष नहीं है ।प्राचीन काल देवगढ़ क्षेत्रादिक में भी साधुओं की मूर्तियाँ बनी हुई मिलती है। अभी भी बना सकते हैं कुछ सुधारवादी विद्वान आचार्यादिक की मूर्ति का विरोध करते हैं किन्तु यह सब गलत है। साधुओं की मूर्ति बनाने में आगम से कोई विरोध नहीं आता।

यक्षाणां देवतानांच सर्व्वालकार भूषितं
सुवाहनायुधोपेतं कुर्यात्सर्व्वांग सुन्दरम्

अर्थ :- यक्षायक्षि देवता की मूर्तियां भी सर्वालंकार भूषित अपने-अपने वाहनों से सहित और अपने-अपने आयुधों से सहित सर्वांग सुन्दर बनवावे।

विशेष :- अर्हंत प्रतिमा के दोनों बाजु यक्ष देव और यक्षि देवी की मूर्ति भी बनवावे। कहा भी है

वामे च यक्षी विभ्राण दक्षिणे यक्ष मुत्तमं
नवग्रह्ययोभागे मध्ये च क्षेत्र पालकम्

अर्थ :- अर्हन्त प्रतिमा के वाम भाग में यक्षी की मूर्ति बनवावे दक्षिण भाग में यक्ष देव की मूर्ति बनवावे। इसी प्रकार सभी प्रतिष्ठा ग्रंथों में अर्हन्त प्रतिमा की मूर्ति का स्वरूप लिखा है। मूलत: अर्हन्त प्रतिमा का स्वरूप **'तिलोय पण्णति'** त्रिलोक सारादि सभी ग्रंथों में ऐसा ही लिखा है। आगमानुसार ही अर्हन्त प्रतिमा बनवावे। प्राचीन काल के जो क्षेत्र हैं- देवगढ़ खजराहो, सेरोनजी कुण्डलपुर आदि उत्तरीय क्षेत्र हो अथवा दक्षिण श्रवणबेल गुादि क्षेत्र हों सभी क्षेत्रों पर प्राचीन मूर्तियाँ यक्ष-यक्षित सहित ही हैं । वे जाने लोग विद्वान कुछ मुद्रा फिरे साधु क्यों विरोध करने में लगे हैं। विरोध माने, प्राचीन परम्परा का और आगम का विरोध करना है। प्राचीन परम्परा ही ठीक है नई परम्परा ठीक नहीं।

लक्षणैरपि संयुक्तं बिंबदृष्टि विवर्जितम्
न शोभतेयतस्मात्कुर्या दृष्टि प्रकाशनम्॥

अर्थ :- सर्व लक्षणों से पूर्ण जिनबिम्ब होने पर भी दृष्टि से रहित नहीं होना चाहिए। दृष्टि विहीन बिम्ब की शोभा नहीं इसलिए जिनबिम्ब की दृष्टि अवश्य खोलना चाहिए। नयनोन्मीलन करना परमावश्यक है।

नात्यंतोन्मीलितास्त चवान विस्फारित मीलिता
तिर्यगूर्द्धमयो दृष्टिं वर्ज्ज्ञयित्वा प्रयत्नत:

अर्थ :- जिन मूर्ति की दृष्टि न अधिक उन्मीलित होना न ज्यादा खुली हुई होना। तिर्यगदृष्टि भी नहीं होना उर्द्धदृष्टि भी नहीं होना और अद्योदृष्टि भी नहीं होना ये सब दृष्टियाँ प्रयत्न से सावधानी से छोडना चाहिए।

नासाग्र निहिता शान्ता प्रसन्ना निर्विकारिका
वीतरागस्यमध्यस्था कर्त्तव्या चोत्तमा तथा

अर्थ :- जिन मूर्ति की दृष्टि नाशाग्र हो, शान्त हो, प्रसन्न हो, निर्विकार हो, वीतराग मुद्रा हो, जिनबिम्ब की दृष्टि उत्तम रीति से करना चाहिए।

खड्गासन जिनप्रतिमा के प्रमाण का कोष्ठक

शरीर के भाग	लंबाई	चौडाई	गोलाई	विशेष स्पष्टीकरण
मुख	१२ केश स्थान से ठोडी पर्यन्त	१२ दोनों नेत्रों के अंत तक	०	ललाट के ऊपर १२ भाग में केशस्थान व चौटी रखे। अर्थात १० भाग परै २ भाग प्रमाण चोटी का स्थान ललाट से चोटी का स्थान तक क्रमश: २ भाग ऊँचाई देवे, और चोटी के स्थान से पिच्छाडी १० भाग में केशस्थान बनावे। १८ भाग तो कानों के आगे १४ भाग कानों के पीछे रखे।
आंगोपांग	लंबाई	चौडाई	गोलाई	विशेष
ललाट	४	८	०	अर्ध चन्द्राकार
नाक	४	३	३	ऊँची शोभनीक ढलाऊ
ठोडी	२	२	०	मुँह की फाड ४ लंबी होठ २ भाग
कर्ण	६	४	०	कानों के ऊपर वर्तिका
				भंवारे की ऊँचाई के सिद्ध में बीच में करडी नस नेत्र के अंत की सीध में कर्ण का अंत भाग की मुख की फाड की सीध में बनावे।

नेत्र	३ भँवर से भापणी	३	०	नेत्रों में सफेदी २ भाग श्याम तारा १ भाग बीच तारीका गोल १ भाग नेत्र १ भाग नीचे का खुला रहे, भंवरे दोनों ४ भाग लम्बे मध्य मोटा मूल में १ ॥ बीच २ भाग अंत में ८
ग्रीवा	४	१२	०	
गरदन से वक्ष स्थल के नीचे हृदय तक	१२	२९	५६	वक्षस्थल के मध्य श्री वत्स का चिन्ह बनावे, वक्षस्थल २४ भाग चौड़ा बनावे। जिसमें दोनों चूची के बीच १२ भाग दोनों चूंची से बगल ६-६ भाग चौड़ा करे।
हृदय से नाभि	१२	०	०	इस भुजा से उस भुजा तक ३६ भाग चौड़ाई नापकर बनावे, कमर १८ भाग चौड़ी ४८ भाग गोलवारा की हाड़ स्कंध से गुदा तक ३६ भाग लंबा करे।
नाभि से लिंग तक	८	०	०	नाभि का मुख १ भाग चौड़ा गोल शंख के मध्य भाग समान ऊंडा दक्षिणा वृत्त मनोहर बनावे, नीचे ८ भाग में रेखा बनावे।
लिंग से गुदा पर्यन्त	८	०	०	
भुजा	६० खंभे (कंधे) से बीच की उंगली तक	६	०	कोहनी ५ ॥ चौड़ी गोल ० खड्गासन प्रतिमा में १८ भाग करे, पोच्छा ४भाग चौड़ा ० १२ भाग गोल पंजा ७ भाग लंबा व ५ भाग चौड़ा, बीच की अंगुली ५ भाग, दोनों बगल की ४ ॥ भाग, कनिष्ठा ३ ॥ भाग, ३ भाग पेरू नख ॥ पेरू प्रमाण करै ॥

नाभि से लिंग तक	८	०	०	नाभि का मुख १ भाग चौड़ा गोल शंख का मध्य भाग समान, गहरा दक्षिणावर्त मनोहर बनावे नीचे ८ भाग में ८ रेखा बनावे।
लिंग	५	२	०	लिंग की चौड़ाई मूल में २ भाग, मध्य में १ भाग अग्र में चार भाग रखे उसकी गोलाई तिगुनी करें।
पोता	५	४	०	दोनों पोते पुष्ट आम की गुठली समान करें।
कूला	०	०	६	बैठक कां हाड़ त्रिकोण ८ भाग लंबा करें।
जंघा गोडे से ३०८	२४	९ ७	०	चौडी मूल ११ भाग मध्य ९ भाग गोड़ा के पास ७ भाग करे।
गोड़ा	४	४	०	दोनों गोड़ा समान गोल जंघा से मिले पुष्ट बनावे।
गोड़ा से टिकुणा	२४	७ ६ ५	०	मूल में गोड़ा के पास ७ भाग, मध्य में ६ भाग टिकुणा के पास ५ भाग चौड़ा करे। टिकुणा १ भाग चौड़ा तिगुनी एडी २ भाग बनावे, पग थली एडी में अंगुष्ट तक १४ भाग लम्बी चौड़ी एडी के पास ४ भाग बीच में ५ भाग पंजे पर ६ भाग बनावे।
अंगुली	३	२	०	अंगुष्ट का प्रमाण नख १ भाग प्रमाण बनावें।
अंगुष्ट ·	३	२	०	अंगुष्ट से अंगुलियाँ और नख क्रम से कम से कम करके बनावे।

कुलण १०८ भाग खडगासन प्रतिमा की कल्पना कर उक्त लेखानुसार हर एक

अंग प्रत्यंग नाप करे। और जहाँ नाप नहीं लिखा है वहाँ यथा संभव सुन्दर उत्तमोत्तम बनावे। यहाँ १०८वें भाग का नाम १ अंगुला है, अंगुल और भाग एक ही समझना चाहिए। दोनों चरणों के बीच ४ भाग अंतर रखे। खड्गासन प्रतिमा में पद्मासन प्रतिमा का माप ५४ भाग प्रमाण इसप्रकार है- चरण चोकी के ऊपर से मस्तक के केस (बाल) स्थान तक, वाम गोड़े के बीच तक, इसप्रकार ५४ भाग प्रमाण नापकर लेवे। दोनों हाथों की उंगुली और पेढ़ू के अंतर ४ भाग कोहनी के पास, २ भाग का उदर से अंतर रखे, पोंचा से कोहनी पर्यन्त यथाशोभित हानिरूप अन्तर रखे। नाभि से लिंग ८ भाग नीचा ५ भाग लंबा बनावे। लिंग के मुंह के नीचे से प्रक्षाल के जलका निकास दोनों पैरों के नीचे से चरण चौकी के ऊपर करें।

(इति आ. कल्पचंद्रासागरजी की डायरी से)

"प्रतिमा की दृष्टि व हीनाधिक अंग-उपांग का फल"

अर्थनाशं विरोधं च तिर्यगदृष्टेर्भयं तदा
ऊधस्तात्पुत्रनाशं च भार्यामरणमूर्ध्वदृक्
शोकमुद्वेगसन्तापं सदा कुर्याद्धनक्षयम्
शान्ता सौभाग्यपुत्रार्थं शान्तिवृद्धि प्रदानदृक्
सदोषा च न कर्तव्या यतः स्यादशुभावहा
कुर्याद्रोद्री प्रभोनशिं कृशाङ्गी वृत्य संक्षयम्
संक्षिप्ताङ्गी क्षयं कुर्याच्चिपिटा दुःखदायिनी
विनेत्रा नेत्रविध्वंसी हीन वस्त्रा त्वभोगिनी
व्याधिं महोदरी कुर्यादधृद्रोगं हृदये कृशा
अङ्गहीना सुतं हन्याच्छुष्कजङ्धा नरेन्द्र हो
पादहीना जनं हन्यात्कटिनाहीना च वाहनम्
ज्ञात्वैवं पूजयेज्जैनी प्रतिमा दोष वर्जिताम्॥

अर्थ :- प्रतिमा की दृष्टि यदि टेढी हो तो प्रतिमा बनवाने वाले का धन का नाश होता है, सबसे बैर विरोध पड़ जाता है, और उसको नाना प्रकार के भय उत्पन्न होते हैं। यदि उसकी दृष्टि नीचे को हो तो पुत्र का नाश होता है, यदि दृष्टि ऊपर हो तो स्त्री का मरण होता है और वह शोक उद्वेग सन्ताप और धन का क्षय करती है। यदि प्रतिमा शान्त हो तो वह सौभाग्य और पुत्रोत्पत्ति के लिए और शान्ति को बढ़ाने वाली

है सदोष प्रतिमा कभी न बनवाना चाहिए क्योंकि वह अशुभ करने वाली होती है रूद्राकार प्रतिमा स्वामी का नाश करने वाली होती है। नेत्र रहित प्रतिमा नेत्र का विध्वंस करने वाली होती है। कृश अंग वाली प्रतिमा द्रव्य का नाश करने वाली होती है सिकुडे हुए अंग वाली प्रतिमा कुल क्षय करती है। चिपटी दु:ख करने वाली होती है। मुख रहित प्रतिमा भोगों का हर करने वाली है। बढ़े पेट वाली व्याधि उत्पन्न करती है। हृदय में कृश प्रतिमा हृदय में रोग पैदा करती है। अंग हीन प्रतिमा पुत्र का नाश करती है। शुष्क जंघा वाली राजा का घात करने वाली होती है। पैर हीन प्रतिमा मनुष्यों का नाश करती है। इसलिए इन सब दोषों को जानकर जैनियों को निर्दोष प्रतिमा की पूजा करनी चाहिए।

प्रतिष्ठा च यथाशक्ति कुर्याद् गुरूपदेशातः
स्थिरं चानुचलं बिम्ब स्थापयित्वाऽत्र पूजयेत्

अर्थ :- गुरु के उपदेशानुसार अपनी शक्ति के अनुसार प्रतिमा बनवावे तथा स्थिर किंवा चल प्रतिमा की स्थापना कर पूजा करे।

फल

क्र.	प्रतिमा में दोष	परिणाम
१	दायीं या बायीं और तिरछी दृष्टि	धननाश, विरोध, भयोत्पत्ति, शिल्पी व आचार्य का नाश
२	नीची दृष्टि	भय, पुत्र व पूजकों का हानि
३	ऊर्ध्वदृष्टि	राजा, राज्य, स्त्री, व पुत्र का नाश
४	स्तब्धदृष्टि	शोक, उद्वेग, संतान, धननाश
५	रौद्ररूप	प्रतिमा कर्ता का मरण,
६	कृशकाय	धनक्षय,.
७	छोटा कद	यजमान का नाश
८	छोटा मुख	शोभा एवं कांतिक्षय,
९	दीर्घ उदर	रोगोत्पत्ति
१०	कृश उदर	दुर्भिक्ष
११	कृश हृदय	महोदर, हृदयरोग
१२	नीचा कंधा	भातृहरण

१३	नाभि लम्बी	कुलक्षय
१४	कांख लम्बी	इष्ट वियोग
१५	पतली कमर	प्रतिमा कर्ता का घात
१६	आसन विषम	व्याधि
१७	कमर के नीचे का भाग पतला	शिल्पियों का सुख नाश
१८	नाख, मुख, पैर टेढे	कुलनाश
१९	हाथ, बाल,नख मुख पतले	कुलनाश
२०	अधिक मोटी या अधिक लम्बी	संपत्ति नाश
२१	हंसती रोती	कर्ता की हानि
२२	गर्व से भरे अंगवाली	कर्ता की हानि
२३	नख भंग	शत्रुभय
२४	नाक भंग	कुलनाश
२५	अंगुली भंग	देश में विप्लव
२६	बाहुभंग	बंधन
२७	पैर क्षय	द्रव्य क्षय
२८	पाद-पीठ भंग	स्वजन नाश
२९	चिन्हभंग	वाहन नाश
३०	परिकरभंग	सेवक नाश
३१	छत्रभंग	लक्ष्मीनाश
३२	श्री वत्स भंग	सुखनाश
३३	आसनभंग	ऋद्धिनाश

पूजा करने की दिशा

क्रं.	दिशा	फल
१	ईशान	सौभाग्य हानि
२	आग्नेय	धन हानि
३	नैऋत्य	कुलक्षय

४	वायव्य	संतान अभाव
५	पूर्व	सुखशांति, समाधान प्राप्ति
६	पश्चिम	संतति मरण
७	उत्तर	धन, धान्य वैभव, प्रतिष्ठा प्राप्ति,
८	दक्षिण	संतान अभाव,

देवस्थान विचार

गृहे प्रविशता वाम भागे शल्य वर्जिते।
देवतावसरं कुर्यात्सार्ध हस्तोर्ध्वभूमिके ॥९८॥
नीचैर्भूमि स्थितं कुर्यात् देवतावसरं यदि।
नीचै नीचे स्ततोवश्यं संतत्यापि समं भवेत् ॥९९॥

(उमास्वामी श्रावकाचार)

देवस्थान बनाते समय इस बात को ध्यान में रखें कि उसे गृह प्रवेश करते हुए वाम भाग में शल्य रहित डेढ हाथ भूमि पर बनाना चाहिए। यदि देवस्थान नीची भूमि पर बनाया जायगा तो गृहस्थ अवश्य ही सन्तान हानि के साथ उत्तरोत्तर हीन-हीन अवस्था को प्राप्त होता जाएगा।

विकृतदृष्टि का फल

अर्थ नाशं विरोधं चतिर्यग्दृष्टि भयं तथा
अधस्तात्पुत्रनाशं च भार्यामरण मूर्द्धगा

अर्थ :- अगर जिन मूर्ति की दृष्टि तिरछी है तो यजमान का धन नाश होगा, विरोध होगा। अगर अधः है (नीचे) तो पुत्र नाश होगा, उर्द्ध (ऊपर) की ओर दृष्टि है तो पत्नी का मरण होगा और भी आगे कहते हैं :-

शोकमुद्धेग संतापस्तच्चा कुर्यात् धनक्षयम्
शान्ता सौभाग्य पुत्रार्थ शांतिवृद्धि प्रदा भवेत्

अर्थ :- विकारी दृष्टि शोक उद्वेग संताप और धन क्षय करने वाली होती है और वीतरागी दृष्टि शांति देने वाली, सौभाग्य देने वाली, पुत्र देने शान्ति वृद्धि को उत्पन्न करने वाली होती है।

सदोषार्धान कर्त्तव्यातः स्याद शुभावहा
कुर्यादौद्रा प्रभोर्नाशंकृशांगी द्रव्य संक्षयम्

अर्थ :- दोष सहित जिनबिम्ब कभी नहीं करना चाहिए नहीं तो अशुभ करने वाली होती है । रौद्ररूप वाली मूर्ति मालिक का नाश करती है। कृश शरीर वाली मूर्ति यजमान के द्रव्य का क्षय करती है।

संक्षिप्तांगी क्षयंकुर्यात्चिपिटा दुःख दायिनी
विनेत्रानेत्र विध्वंश हीन वक्रात्व शोभिनी

अर्थ :- संक्षिप्त आंगोपांग वाली मूर्तिक्षय कर देती है। चिपटी मूर्ति दुःख को देने वाली होती है। नेत्र रहित मूर्ति यजमान को अन्धा करती है। दीन वक्र मूर्ति अशोभित होती है।

व्याधिं महोदरी कुर्यादु द्रोगं हृदये कृशा
अंश हीना तु जंहन्याच्छुष्क जंघा नरेन्द्रहा
पादहीना जनंद्दन्यात् कटि हीना च वाहनं
ज्ञात्वैवंकार येज्ज्ञैनी प्रतिमा दोषवर्जितां

अर्थ :- बड़े पेटवाली मूर्ति व्याधि को उत्पन्न करती है। हृदय-कृश प्रतिमा उद्वेग प्राप्त करती है। अंश हीन प्रतिमा स्वयं का क्षय करती है। पतली जंघा वाली मूर्ति राजा का नाश करती है। पाँव हीन अज पशु सम्पत्ति हीन करती है और कमरहीन है तो वाहनों का नाश करती है। इस प्रकार दोष जानकर जिनेन्द्र प्रतिमा दोषों से रहित बनावें।

सामान्येनेदमारव्यातं प्रतिमा लक्षणंमया
विशेषतः पुनर्ज्ञेयं श्रावकाध्ययनेस्फुटं
एवं समासतः प्रोक्ताप्रतिमा लक्षणं स्फुटम्
पीठ संस्थापनं तासामतो वक्ष्येयथागमम्

अर्थः- मेरे द्वारा सामान्यतः से प्रतिमा का लक्षण कहा गया विशेष रीति से जानना हो तो श्रावकाध्ययन ग्रंथ देखो। इसप्रकार प्रतिमा का लक्षण कहकर पीठ स्थापना का जैसा आगम में कहा है वैसा कहूँगा। (**प्रतिष्ठासार , आ. वसुनन्दी सिद्धा.**)

खंडित प्रतिमा पूजनीक नहीं है

नाशामुखे तथा नैत्रे हृदये नाभिमण्डले।
स्थानेषु व्यञ्जितागेषु प्रतिमां नैव पूजयेत्॥

अर्थ :- यदि प्रतिमा का नाक, मुँह, नेत्र, हृदय, नाभि आदि आंगोपांग खण्डित हो जाय तो ऐसी प्रतिमा की पूजा नहीं करे, लेकिन प्रतिष्ठत हुए १०० साल अगर नहीं हुवे हो तो।

सौ साल से ऊपर की प्रतिमा अगर खण्डित हो गई हो तो वह पूजनीक है। आचार्यों ने लिखा है कि अतिशय सम्पन्न खण्डित प्रतिमा का टुकड़ा टुकड़ा पूजनीक है, अपूज्य नहीं है।

अतिशय से युक्त खंड़ित प्रतिमा व अखण्ड प्रतिमा का फल

वरिससयाओउडढं जं बिंब उत्तमेहिं संठवियं
विभलुंगु वि पूइज्जइ तं बिंब निष्फलं न जओ ॥ ३९॥

अर्थ :- जो प्रतिमा एक सौ वर्ष के पहले उत्तम पुरुषों ने स्थापित की हुई होवे वह यदि विकलांग (बेडोल) होवे अथवा खंड़ित होवे तो भी उस प्रतिमा को पूजना चाहिए। पूजन का फल निष्फल नहीं जाता है।

खण्डित प्रतिमा का क्या करें व उसका विधान क्या ?

स्नापयेदंगभंगेष्ठ सहस्त्रेण जिनेश्वरम्
होमंवा पातव कुर्याद भग्नंचांगं सुसेवयेत्।
ततो जलाधि वासादि प्रतिष्ठापनमाचरेत्।

(जिन संहिताग्रंथ से)

यदि किसी के हाथ से प्रतिमा खंडित हो जाय तो उसी तीर्थंकर की अन्य प्रतिमा का एक हजार आठ शुद्ध जल के कलशों से तथा पंचामृत से मंत्र पूर्वक महाभिषेक करना चाहिए। फिर एक सौ आठ बार मूल मंत्र णमोकार मंत्र की आहुति देनी चाहिए। तथा उस भंग हुई प्रतिमा को किसी अगाध जल में कपड़े में बाँधकर विसर्जन कर

देना चाहिए। कोई भी एक विधान करना चाहिए। चाहे शांति विधान चाहे पंच परमेष्ठि विधान, चाहे चौबीस तीर्थंकर विधान इन तीनों में कोई एक विधान करना चाहिए।

शांति मंत्र का अथवा णमोकार मंत्र १५० माला जपना चाहिए।

क्रम:-

(१) पहले जाप्य

(२) विधान

(३) होम आहुति

(४) फिर प्रतिमा खंडित को कपड़े में बाँधकर गहरे जलाशय में विसर्जन कर देवें।

नोट :- जिसके हाथ से प्रतिमा भंग हुई है उसको निर्गंथाचार्य के पास जाकर प्रायश्चित लेना चाहिए।

उसी तीर्थंकर की नवीन मूर्ति लाकर प्रतिष्ठा करवाकर स्थापन करना चाहिए।

परिशिष्ट

जैन प्रतिमा विज्ञान से उधृत जैन मंदिर और प्रतिमाएँ

मंदिर निर्माण के योग्य स्थान

मंदिर कैसे स्थान पर निर्मित किये जाना चाहिए ? इस जिज्ञासा का समाधान प्राय: सभी ग्रंथकारों ने एक समान उत्तर देकर किया है। जयसेन ने नगर के शुद्ध प्रदेश में, अटवी में, नदी के समीप में और पवित्र तीर्थभूमि में विराजित जैनमंदिर को प्रशस्त कहा है।[१] वसुनन्दी के अनुसार, तीर्थंकरों के जन्म, निष्क्रमण, ज्ञान और निर्वाणभूमि में तथा अन्य पुण्य प्रदेश, नदीतट, पर्वत, ग्रामसन्निवेस, समुद्रपलिन आदि मनोज्ञ स्थानों पर जिनमंदिरों का निर्माण किया जाना चाहिए।[२] अपराजित पृच्छा में जिनमंदिरों को शान्ति दायक स्वीकार किया है और उन्हें नगर के मध्य में बनाने का विधान किया गया है।[३]

जिनमंदिर के लिए भूमि का चयन करते समय अनेक उपयोगी बातों पर विचार करना होता है, भूमि शुद्ध हो, रम्य हो, स्निग्ध हो, सुगंधवाली हो, दूर्वा से आच्छादित हो, पोली न हो, वहाँ कीड़े-मकोड़ों का निवास न हो और श्मसान भूमि भी न हो।[४] भूमि का चयन मंदिर निर्माण विधि का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग है। योग्य भूमि पर निर्मित प्रासाद ही दीर्घकाल तक स्थित रह सकता है।

विभिन्न ग्रंथकारों ने भूमि परीक्षा के दो उपाय बताये हैं। जिस भूमि पर मंदिर निर्मित करने का विचार किया गया हो, उसमें एक हाथ गहरा गड्ढा खोदा जावे और फिर उस गड्ढे को उसी में से निकली मिट्टी से पूरा जावे। ऐसा करने पर यदि मिट्टी गड्ढे से अधिक पड़े तो वह भूमि श्रेष्ठ मानी गई है। यदि मिट्टी गड्ढे के बराबर हो तो भूमि मध्य कोटि की होती है और यदि उतनी मिट्टी से गड्ढा पुन: पूरा न भरे तो वह भूमि अधम जाति की होती है।

---

१. प्रतिष्ठा पाठ, १२५

२. प्रतिष्ठा सार संग्रह, ३/३,४।

३. अपरा. १७९/१४।

४. आशा. १/१८ वसुविन्दु, २८।

वहाँ मंदिर का निर्माण नहीं करना चाहिए।[१] ठक्कर फेरू ने यह उपाय भी बताया है कि उत्खात गड्ढे को जल से परिपूर्ण कर सौ कदम दूर जाइये। लौटकर आने पर यदि गड्ढे का जल एक अंगुल कम मिले तो भूमि को उत्तम, दो अंगुल कम मिलने पर मध्यम और तीन अंगुल कम होने पर अधम समझना चाहिए।[२] निर्वाण कलिकाकार ने गड्ढे के सम्पूर्ण भरे रहने पर भूमि को श्रेष्ठ, एक अंगुल खाली होने पर मध्यम और उससे अधिक खाली हो जाने पर निकृष्ठ कहा है।[३]

प्रतिष्ठाग्रंथों तथा वास्तुशास्त्रीय ग्रंथों में मंदिरों के प्रकार आदि का विवरण मिलता है किन्तु प्रस्तुत ग्रंथ का विवेच्य विषय नहीं होने के कारण तद्विषयक विवेचन यहाँ नहीं किया जा रहा है।

प्रतिमा घटन द्रव्य

प्राचीन काल में मंदिरों में प्रतिष्ठा करने के लिए प्रतिमाओं का निर्माण किया जाता था। वे दो प्रकार की होती थीं, प्रथम चल प्रतिमा और द्वितीय अचल प्रतिमा। अचल प्रतिमा अपनी वेदिका पर स्थिर रहती है किन्तु चल प्रतिमा विशिष्ट अवसरों पर मूल वेदी से उठाकर अस्थायी वेदी पर लायी जाती है और उत्सव के अन्त में यथास्थान वापस पहुँचायी जाती हैं। अचल प्रतिमा को ध्रुवबैर और चल प्रतिमा को उत्सववेर कहा जाता है। इन्हें क्रमशः स्थावर और जंगम प्रतिमा भी कहते हैं।

वसुनन्दि के श्रावकाचार में मणि, रत्न, स्वर्ण, रजत, पीतल, युक्ताफल और पाषाण की प्रतिमाएँ निर्मित किये जाने का विधान है।[४] जयसेन ने स्फटिक की प्रतिमाएँ भी प्रशस्त बतायी है।[५] काष्ठ, दन्त और लोहे की प्रतिमाओं के विषय में विभिन्न आचार्यों में मतभेद है। कुछ आचार्यों ने काष्ठ, दन्त और लोहे की प्रतिमाओं के निर्माण का किसी भी प्रकार से उल्लेख नहीं किया है। कुछ ने इन द्रव्यों से जिनबिम्ब निर्माण किये जाने का स्पष्ट निषेध किया है।

जबकि कुछ ने ऐसे बिम्बों की प्रतिष्ठा विधि का वर्णन किया है।

---

१. आशा. १।१९; वसुबिन्दु २९ वास्तुसार प्रकरण १।३, निर्वाण कलिका, पन्ना १०।

२. वास्तुसार प्रकरण १।४

३. निर्वाणकलिका, पन्ना १०।

४. श्रावकाचार, ३९०

५. प्रतिष्ठापाठ, ६३।

भट्टा कलंक ने मिट्टी, काष्ठ और लोह से निर्मित प्रतिमाओं को प्रतिष्ठेय बताया है।[१] वर्धमानसूरि ने काष्ठमय, दन्तमय और लेप्यमय प्रतिमाओं की प्रतिष्ठाविधि का वर्णन किया है।[२] किन्तु काँसे, सीसे और कलई की प्रतिमाओं के निर्माण का निषेध किया है। जयसेन आदि आचार्यों ने मिट्टी, काष्ठ और लेप से बनी प्रतिमाओं को पूज्य नहीं बताया है।[३] यद्यपि जीवन्तस्वामी की चन्दनकाष्ठ की प्रतिमा निर्मित किये जाने का प्राचीन ग्रंथों में उल्लेख मिलता है[४]। पर ऐसा प्रतीत होता है कि काष्ठ जैसे भंगुर द्रव्यों से जिन प्रतिमाएँ निर्मित किये जाने की विचारधारा को जैन परम्परा में कभी स्थायी मान्यता प्राप्त नहीं हो सकी। पाषाण की प्रतिमाएँ निर्मित किया जाना सर्वाधिक मान्यता प्राप्त एवं व्यावहारिक रहा।

प्रतिमा निर्माण के लिए शिला के अन्वेषण और उसके गुण दोषों के विचार के विषय में भी प्राचीन ग्रंथों में विवेचन मिलता है। आशाधर ने लिखा है कि जब मंदिर के निर्माण का कार्य पूरा हो जावे अथवा पूरा होने को हो तो प्रतिमा के लिए शिला का अन्वेषण करने शुभ लग्न और शकुन में इष्ट शिल्पी के साथ जाना चाहिए।[५] वसुनन्दि ने श्वेत, रक्त, श्याम, मिश्र, पारावत, मुद्ग, कपोत, पद्म मंजिष्ठ और हरितवर्ण की शिला को प्रतिमा निर्माण के लिए उत्तम बताया है।[६] वह शिला कठिन, शीतल, स्निग्ध, सुस्वाद, सुस्वर, दृढ़, सुगंधयुक्त, तेजस्विनी, और मनोज्ञ होना चाहिए।[७] बिन्दु और रेखाओं वाली शिला प्रतिमा निर्माण कार्य के लिए वर्ज्य कही गयी है। उसी प्रकार मृदु, विवर्ण, दुर्गन्धयुक्त, लघु, रूक्ष, धूमल और निःशब्द शिलाएँ भी अयोग्य ठहरायी गयी हैं।[८]

गृह पूज्य प्रतिमाएँ

निवास गृह में पूज्य प्रतिमाओं की अधिकतम ऊँचाई के विषय में जैन ग्रन्थकारों में किञ्चित मतभेद दिखायी पड़ता है।

१. तद्योग्यैः सुगणेर्द्रव्येनिर्दोषैः प्रौढशिल्पिना।
रत्नपाषाणमृद्दारुलौहाद्यैः साधुनिर्मितम्॥
२. आचार दिनकर, उदय ३३
३. प्रतिष्ठा पाठ, १८३
४. उमाकांत परमानन्द शाह : स्टडीज इन जैन आर्ट, पृष्ठ ४।
५. प्रतिष्ठासारोद्धार ह, १।४९
६. प्रतिष्ठासारसं ह, ३।७७
७. वही, ३।७८। प्रतिष्ठासारोद्धार, १, ५०, ५१
८. प्रतिष्ठासार संग्रह, ३ ।७९ ।

दिगम्बर शाखा के वसुनन्दि ने द्वादश अंगुल तक ऊँची प्रतिमा को घर में पूजनीय बताया है।[१] किन्तु ठक्कर फेरू ग्यारह अंगुल तक ऊँची प्रतिमा को ही गृह पूज्य कहते हैं।[२] इस का मुख्य कारण यह है कि ठक्कर फेरू ने सम अंगुल प्रमाण प्रतिमाओं को अशुभ माना है। आचार दिनकरकार भी विषम अंगुल प्रमाण की ही प्रतिमाएँ निर्मित किये जाने का विधान और सम अंगुल प्रमाण की प्रतिमाएँ निर्मित करने का निषेध करते हैं।[३]

ठक्कर फेरू ने सिद्धों की केवल धातु निर्मित प्रतिमाओं को ही गृह पूज्य बताया है। सकल चन्द्र उपाध्याय जैसे ग्रंथकारों ने बाल ब्रह्मचारी तीर्थंकरों की प्रतिमाओं को भी गृह पूज्य नहीं कहा है क्योंकि उन प्रतिमाओं के हर क्षण दर्शन करते रहने से परिवार के सभी लोगों को वैराग्य हो जाने की आशंका हो सकती है। मलिन, खण्डित, अधिक या हीन प्रमाणवाली प्रतिमाएँ भी गृह में पूज्य नहीं है।

अपूज्य प्रतिमाएँ

रूप मण्डनकार ने हीनाँग और अधिकांग प्रतिमाओं के निर्माण का सर्वधा निषेध किया है।[४] शुक्र नीति में हीनांग प्रतिमा को, निर्माण कराने वाले की और अधिकाँग प्रतिमा को शिल्पी की मृत्यु का कारण बताया है।[५] जैन परम्परा के ग्रंथों में भी वक्रांग, हीनाँग और अधिकाँग प्रतिमा निर्माण को भारी दोष माना गया है। वास्तुसार प्रकरण में सदोष प्रतिमा के कुफल का विस्तार से वर्णन है। टेढी नाकवाली प्रतिमा बहुत दुख दायी होती है। प्रतिमा के अंग छोटे हों तो वह क्षयकारी होती है। कुनयन प्रतिमा से नेत्रनाश और अल्पमुखवाली प्रतिमा के निर्माण से भोगहानि होती है। यदि प्रतिमा की कटिहीन प्रमाण हो तो आचार्य का नाश होता है। हीन जँघा प्रतिमा से पुत्र और बँधु की मृत्यु हो जाती है। प्रतिमा का आसन हीन प्रमाण होने से ऋद्धियाँ नष्ट होती हैं। हाथ-पैर हीन होने से धन का क्षय होता है। प्रतिमा की गर्दन उठी हुयी हो तो धन का विनाश, वक्रग्रीवा से देश का विनाश और अधोमुख से चिन्ताओं की वृद्धि होती है। ऊँच-नीच मुखवाली प्रतिमा से विदेशगमन का कष्ट होता है।

---

१. प्रतिष्ठासारसंग्रह, ५।७७

२. वास्तुसार प्रकरण, २ ।४३

३. आचार दिनकर, उदय ३३।

४. रूपमण्डन १।१४

५. शुक्रनीति, ४।५०६

अन्यायतोपात्त धन से निर्मित करायी गयी प्रतिमा से विदेशगमन का कष्ट होता है। अन्यायोपात्त धन से निर्मित करायी गयी प्रतिमा दुर्भिक्ष फैलाती है। रौद्र प्रतिमा से निर्माण कराने वाले की और अधिकाँग प्रतिमा से शिल्पी की मृत्यु होती है। दुर्बल अंगवाली प्रतिमा से द्रव्य का नाश होता है। तिरछी दृष्टि वाली प्रतिमा अपूज्य है। अति गाढ़ दृष्टि युक्त प्रतिमा अशुभ एवं अधोदृष्टि प्रतिमा विघ्न कारक होती है।[१] वसुनन्दि ने जिन प्रतिमा में नासाग्रनिहित, शान्त, प्रसन्न, एवं मध्यस्थ दृष्टि को उत्तम बताया है। वीतराग की दृष्टि न तो अत्यन्त उन्मीलित हो और न विस्फुरित हो। दृष्टि तिरछी, ऊँची या नीची न हो उसका विशेष ध्यान रखे जाने का विधान है।[२] वास्तुसार प्रकरण के समान वसुनन्दि ने भी अपने प्रतिष्ठासार संग्रह में सदोष प्रतिमा के निर्माण से होने वाली हानियों का विवरण दिया है।[३] आशाधर पंडित और वर्धमान सूरि ने भी अनिष्ठ कारी, विकृतांग और जर्जर प्रतिमाओं की पूजा का निषेध किया है।[४] यद्यपि महाभारत के भीष्म पर्व, बृहत्संहिता, रूपमण्डन आदि ग्रंथों में उल्लेख मिलता है कि प्रतिमा के निर्माण, प्रतिष्ठा और पूजन में यथेष्ठ विधि के अपालन के कारण प्रतिमा में विकृति उत्पन्न होने का कोई उल्लेख किसी भी जैन ग्रंथ में नहीं मिलता।

भग्न प्रतिमाएँ।

भग्न प्रतिमाओं की पूजा नहीं की जाती । उन्हें सम्मान के साथ विसर्जित कर दिया जाता है। मूल नायक प्रतिमा के मुख, नाक, नेत्र, नाभि और कटि के भग्न हो जाने पर वह त्याज्य होती है।[५] जिन प्रतिमा के विभिन्न अंग

प्रत्यंगो के भंग होने का फल बताये हुए ठक्कर फेरू ने कहा है कि नखभंग होने से शत्रुभय, अंगुली भंग से देशभंग, बाहुभंग होने से, बंधन, नासिका भंग होने से कुलनाश और चरण भंग होने से द्रव्य क्षय होता है।[६] किन्तु इन्हीं ग्रन्थकार का यह भी मत है कि जो प्रतिमाएँ सौ वर्ष से अधिक प्राचीन हों और महापुरुषों द्वारा स्थापित की गयी हों वे यदि विकलांग भी हो जावे तब भी पूजनीय हैं।[७]

---

१. वास्तुसार प्रकरण, २।४६-५१

२. प्रतिष्ठासार संग्रह, ४।७३-७४

३. वही, ४।७५-८०

४. प्रतिष्ठासारोद्धार, १।८३, आचार दिनकर, उदम ३३

५. वास्तुसार प्रकरण, २।४०

६. वास्तुसार प्रकरण, २।४४

७. वही २ ।३९

आचार दिनकरकार ने भी यह मत स्वीकार किया है, किन्तु उन्होंने उन प्रतिमाओं को केवल चैत्य में रखने योग्य कहा है, गृह में पूज्य नहीं।[१]

भग्न प्रतिमाओं के जीर्णोद्धार के संबंध में भी विभिन्न ग्रंथों में उल्लेख मिलते हैं। रूपमण्ड[२] में धातु, रत्न और विलेप की प्रतिमाओं के अंग भंग होने पर उन्हें संस्कार योग्य बताया है किन्तु काष्ठ और पाषाण की प्रतिमाओं के जीर्णोद्धार का निषेध किया गया है। ठक्कर फेरू केवल धातु और लेप की प्रतिमाओं के जीर्णोद्धार के पक्ष में हैं, वे रत्न, काष्ठ और पाषाण की प्रतिमाओं को ज़ीर्णोद्धार के अयोग्य मानते हैं।[३] आचार दिनकर भी इसी मत के समर्थक हैं।[४] निर्वाणकलिका में शैलमय बिम्ब के विसर्जन की विधि बतायी है। किन्तु स्वर्णबिम्ब को पूर्ववत् निर्मित कर पुनः प्रतिष्ठेय कहा गया है।[५]

जिन प्रतिमा के लक्षण

जैन प्रतिष्ठाग्रंथों और बृहत्संहिता, मानसार, समरांगणसूत्रधार, अपराजितपृच्छा, देवतामूर्तिप्रकरण, रूपमण्डन आदि ग्रंथों में जिन प्रतिमा के लक्षण बताये गये हैं। जिन प्रतिमाएँ केवल दो आसनों में बनायी जाती हैं, एक तो कायोत्सर्ग आसन जिसे खड्गासन भी कहते हैं और द्वितीय पद्मासन। इसे कहीं कहीं पर्यंक आसन भी कहा गया है। इन दो आसनों को छोड़कर किसी अन्य आसन में जिन प्रतिमा निर्मित किये जाने का निषेध किया गया है।

जयसेन ने जिन बिम्ब को शाँत, नासाग्रदृष्टि, प्रशस्तमानोन्मानयुक्त, ध्यानारूढ एवं किञ्चित् नम्रगीव बताया है। कायोत्सर्ग आसन में हाथ लम्बायमान रहते हैं एवं पद्मासन प्रतिमा में वाभहस्त की हथेली दक्षिण हस्त की हथेली पर रखी हुयी होती है।[६] जिन प्रतिमा दिगम्बर, श्री वृक्षयुक्त, नखकेशविहीन, परम शान्त, वृद्धत्व तथा बाल्य रहित, तरुण एवं वैराग्य गुण से भूषित होती है। वसुनन्दि[७] और आशाधर पंडित[८] ने भी जिन प्रतिमा के उपर्युक्त लक्षणों का निरूपण किया है। विवेक-विलास में कायोत्सर्ग और पद्मासन प्रतिमाओं के सामान्य लक्षण बताये गये हैं।[९]

१. आचार दिनकर, उदय ३३
२. १।१२
३. वास्तुसार प्रकरण, २।४१
४. उदय ३३
५. पत्र ३१
६. प्रतिष्ठा पाठ, ७०
७. प्रतिष्ठासार संग्रह ४।१,२,४
८. प्रतिष्ठोसारोद्धार, १।६३
९. विवेक विलास १।१२८-१३०

सिद्ध परमेष्ठी की प्रतिमाओं में प्रातिहार्य नहीं बनाये जाते हैं।[१] अर्हत्प्रतिमाओं में उनका होना आवश्यक है। अर्हंत और सिद्ध दोनों की मूल प्रतिमाएँ बनायी तो समान जाती हैं पर अष्ट प्राहिहार्यों के होने अथवा न होने की अवस्था में उनकी पहचान होती है। अर्हत अवस्था की प्रतिमा में अष्ट प्रातिहार्यों के साथ दायीं ओर यक्ष, बायीं ओर यक्षी और पादपीठ के नीचे जिनका लांछन भी दिखाया जाता है।[२] **तिलोयपण्णत्ती** में भी सिंहासन तथा यक्षयुगल से युक्त जिन प्रतिमाओं का वर्णन है। ठक्कर फेरू ने तीर्थंकर प्रतिमा के आसन और परिकर का विस्तार से वर्णन किया है।[३] मानसार में भी जिन प्रतिमाओं के परिकर आदि का वर्णन प्राप्त है। अपराजितपृच्छा में यक्ष-यक्षी, लांछन और प्रातिहार्यों की योजना का विधान है।[४] सूत्रधार मंडन के दोनों ग्रंथों में जिन प्रतिमा को छत्रत्रय, अशोकद्रुम, देवदुन्दुभि, सिंहासन, धर्मचक्र आदि से युक्त बताया गया है।

प्रत्येक तीर्थंकर प्रतिमा अपने लांछन से पहचानी जाती है। वह लांछन प्रतिमा के पादपीठ पर अंकित किया होता है।[५] किन्तु कुछ तीर्थंकरों की प्रतिमाओं में उनके विशिष्ट लक्षण भी दिखाये जाते हैं, जैसे आदि जिनेन्द्र की प्रतिमा जटाशेखर युक्त होती है।[६] सुपार्श्वनाथ के मस्तक पर सर्प के पाँच फणों का छत्र[७] और पार्श्वनाथ के मस्तक पर सातफणोंवाले नाग का छत्र होता है।[८] बलराम और वासुदेव सहित नेमिनाथ की प्रतिमा मथुरा में प्राप्त हुयी है।

आचार्यों और साधुओं की प्रतिमाएँ पिच्छिका, कमण्डलु या पुस्तक के सद्भाव के कारण पहचान ली जाती हैं।

---

१. प्रतिष्ठासार संग्रह, ४।७०
२. प्रतिष्ठासारोद्धार, १।७६-७७
३. वास्तुसार प्रकरण, २।२६-३८
४. अपराजित पृच्छा, १३३।२६-६७
५. अति प्राचीन प्रतिमाओं में लांछन नहीं होते थे। मथुरा की कुषाण कालीन जिन प्रतिमाओं में लांछन नहीं है।
६. तिलोय पण्णत्ती, ४।२३०
७. पद्मानंदमहाकाव्य, १।१०
८. वही, १।२६

तालमान

जैन और जैनेत्तर शिल्प ग्रंथों में जिनप्रतिमा के मानादिक का विवरण मिलता है। रूपमण्डल जैसे कुछ ग्रंथों में जिन प्रतिमा का ऊर्ध्वमान दशताल कहा गया है किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि नवताल जिन प्रतिमा के निर्माण विधान की मान्यता प्राय: प्रचलित रही है और शिल्प कारों ने अधिकतर उसी का अनुसरण किया है।

परमाणु तालमान की सबसे छोटी इकाई है। वह अत्यन्त सूक्ष्म स्वरूप है। तिलोयपण्णत्ती में [१] बताया गया है कि परमाणुओं के अनंतानंत बहुविध द्रव्य से एक उपसन्नासन्न स्कंध बनता है और आठ उपसन्नासन्न स्कंधों के बराबर एक सन्नासन्न स्कंध होता है।

सन्नासन्न स्कंध से ऊँची इकाइयों को तिलोयपण्णत्तीकार इस प्रकार बताते हैं।[२]–

८ सन्नासन्न स्कंध = १ त्रुटिरेणु
८ त्रुटिरेणु = १ त्रसरेणु
८ त्रसरेणु = १ रथरेणु
८ रथरेणु = १ उत्तम भोगभूमि का वालाग्र
८ उत्तम भोगभूमि का वालाग्र = १ मध्यम भोगभूमि का बालाग्र
८ मध्यभोगभूमि का बालाग्र = १ जघन्य भोगभूमि का बालाग्र
८ जघन्य भोगभूमि का बालाग्र = १ कर्मभूमि का बालाग्र
८ कर्मभूमि बालाग्र = १ लिक्षा
८ लिक्षा = १ जूं
८ जूं = १ यव
८ यव = १ अंगुल

कौटिल्य के अर्थशास्त्र (२,२०,२-३) में ८ परमाणु = १ रथरेणु और ८ रथरेणु = १ लिक्षा का मान बताया गया है। **बृहत्संहिता** में रेणु और लिक्षा के बीच बालाग्र का भी विचार किया गया है। तदनुसार ८ परमाणु = १ रजांश, ८ रजांश = १ बालाग्र और ८ बालाग्र = १ लिक्षा का क्रम होता है।

१. १।१०२-१०३
२. १।१०४-१०६

आठ यवमध्यों का अंगुल कहते हुए भी अर्थ शास्त्रकार ने बताया है कि सामान्यतया मध्यम कद के पुरुष की मध्य अंगुली के मध्य भाग की मोटाई एक अंगुल मान है।[१]

तिलोयपण्णत्तीकार ने तीन प्रकार के अंगुल बताये हैं, **उत्सेधांगुल प्रमाणांगुल** और **आत्मांगुल**।[२] उन्होंने बताया है कि जो अंगुल उपर्युक्त परिभाषा से सिद्ध किया गया है। वह उत्सेधसूच्यंगुल है। प्रमाणांगुल पाँच सौ उत्सेधांगुल के बराबर होता है तथा भरत और ऐरावत क्षेत्र में उत्पन्न मनुष्यों के अपने काल के अंगुल का नाम आत्मांगुल है।

उपर्युक्त तीन प्रकार के अंगुलों में से पाँच सौ उत्सेधसूच्यंमुल के बारबर वाले अंगुल के मान से प्रतिमाओं का निर्माण किया जा सकना वर्तमान काल के लिए असंभव तो है ही, पर आठ यव मध्यवाले अंगुल और स्वकीय अंगुल के मानवाली प्रतिमाओं का निर्माण भी शास्त्रीय मानयोजना के अनुसार अव्यावहारिक था। स्वकीयांगुल मान से यह स्पष्ट नहीं होता है कि वह मूर्ति निर्माण कराने वाले का अंगुल होना चाहिए अथवा शिल्पी का अंगुल। दोनों के अंगुल की मोटाई में आधिक्य और न्यूनता की संभावना हो सकती है। ऐसी स्थिति में, यह प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में प्रतिमा निर्माण कार्य के लिए न तो आठ यव वाले अंगुल के मान को और न शिल्पकार अथवा निर्माता के अंगुल वाले मान को ही सुनिश्चित मान माना जा सका था। एक ही समय में और संभवत: एक ही शिल्पी द्वारा निर्मित भिन्न-भिन्न प्रतिमाएँ छोटी और बड़ी मिलती है। यदि उपर्युक्त मानयोजना के अनुसार वे निर्मित की गयी होती तो उनका मान एक सा होना चाहिए। इसलिए यह मानना पड़ेगा कि उपर्युक्त मानों के अतिरिक्त एक और मान को वास्तविक मान्यता प्राप्त रही होगी।

जिसका उपयोग प्राचीन प्रतिमा निर्माण में किया जाता था। वह मान है प्रतिमा का मुख।

वसुनन्दि ने ताल, मुख, वितस्ति और द्वादशांगुल को समानार्थी बताया है और उस मान से बिम्ब निर्माण का विधान किया है।[३] प्रतिमा के मुख को एक भाग मानकर सम्पूर्ण प्रतिमा के नौभाग किये जाने चाहिए।

---

१. अर्थशास्त्र, २, २०, ७

२. तिलोयपण्णती, १।१०७

३. प्रतिष्ठासारसंग्रह, ४-५

तदनुसार वह प्रतिमा नौताल या १०८ अंगुल की होगी। इसे इसप्रकार भी कहा जा सकता है कि नवताल प्रतिमा का नवां भाग एक ताल और उसका १०८ वाँ भाग एक अंगुल कहलावेगा।

वसुनन्दि ने नवताल में बनी ऊर्ध्व (कायोत्सर्ग आसन) जिन प्रतिमा का मान इसप्रकार बताया है:-

मुख	१ ताल (१२ अंगुल)
ग्रीवाधः भाग	४ अंगुल
कण्ठ से हृदय तक	१२ अंगुल
हृदय से नाभि तक	१ ताल (१२ अंगुल)
नाभि से मेढ तक	१ हस्त (१२ अंगुल)
मेढ से जानु तक	१ मुख (२४ अंगुल)
जानु	४ अंगुल
जानु से गुल्फ तक	१ हस्त (२४ अंगुल)
गुल्फ से पादतक तक	४ अंगुल

योग १०८ अंगुल = ९ ताल [२]

प्रतिष्ठासार संग्रह(वसुनन्दि) ने प्रतिमा के अंग-उपांगों के मान का विस्तार से विवरण दिया है। [३] द्वादशांगुल विस्तीर्ण और आयत केशान्त मुख के तीन भाग करने पर ललाट, नासिका और मुख (वचन) प्रत्येक भाग ४-४ अंगुल का होता है। नासिकारंध्र ८ १/२ यव और नासिकापाली ४ यव होना चाहिए। ललाट का तिर्यंक आयाम आठ अंगुल बताया गया है। उसका आकार अर्ध चन्द्र के समान होता है। पाँच अंगुल आयत केशस्थान में उष्णीय दो अंगुल उन्नत होता है। जयसेन (वसुविन्दु) के प्रतिष्ठापाठ में भी जिनप्रतिमा के तालमान संबंधी विवरण उपलब्ध हैं। वे प्रायः वसुनन्दि के समान ही हैं। जयसेन ने भ्रू-लता को ४ अंगुल आयत, मध्य में स्थूल, छोर में कृश अर्थात् धनुषाकार कहा है। नेत्रों की पलकें ऊपर-नीचे नदी के तटों के समान होती हैं। ओष्ठ का विस्तार ४ अंगुल, जिसका मध्यभाग १ अंगुल उच्छित होता है। चिबुक ३ १/२ अंगुल, उसके मूल से लेकर हनु तक अन्तर ४ अंगुल कर्ण और नेत्र का अंतर भी ४ अंगुल । आदि आदि

१. रूपमण्डन की नवताल प्रतिमा का भी यही मान है।

२. परिच्छेद ४

पद्मासन जिन प्रतिमा का उत्सेध कायोत्सर्ग प्रतिमा से आधा अर्थात् ५४ अंगुल बताया गया है। उसका तिर्यक आयाम् एक समान होता है। एक घुटने से दूसरे घुटन तक, दायें घुटने से बायें कंधे तक, बायें घुटने से दायें कंधे तक और पादपीठ से केशांत तक चारों सूत्रों का मान एक बराबर बताया गया है। वसुनन्दि के अनुसार पद्मासन प्रतिमा के बाहुयुग्म के अंतरित प्रदेश में चार अंगुल का ह्रास तथा प्रकोष्ठ से कर्पूर पर्यन्त दो अंगुल की वृद्धि होती है।[१]

वास्तुसार प्रकरण के द्वितीय प्रकरण में पद्मासन और कायोत्सर्ग जिन प्रतिमाओं के मान संबंधी विवरण श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार दिये गये हैं। वास्तुसार प्रकरण के रचयिता ठक्कर फेरू पद्मासन प्रतिमा को समचतुरस्त्र संस्थान युक्त कहते हैं। तदनुसार उसके चारों सूत्र बराबर होते हैं किन्तु उनके अनुसार पद्मासन प्रतिमा ५६ अंगुल मान की होती है जो इसप्रकार हैं :-

भाल	४ अंगुल
नासा	५ अंगुल
वचन	४ अंगुल
ग्रीवा	३ अंगुल
हृदय	१२ अंगुल
नाभि	१२ अंगुल
गुह्य	१२ अंगुल
जानु	४ अंगुल

योग ५६ अंगुल[२]

ठक्कर फेरू ने कायोत्सर्ग प्रतिमा को नवताल अर्थात् १०८ अंगुल की बताया है।[३] उन्होंने ऊर्ध्व (कायोत्सर्ग) प्रतिमा के अंग विभाग के ग्यारह स्थान बतलाये हैं जो निम्नप्रकार हैं:-

ललाट	४ अंगुल
नासिका	५ अंगुल
वचन (मुख)	४ अंगुल
ग्रीवा	३ अंगुल

१. प्रतिष्ठासार संग्रह, ४ /६८

२. वास्तुसार प्रकरण, २/८

३. वास्तुसारप्रकरण, २।५

हृदय	१२ अंगुल
नाभि	१२ अंगुल
गुह्य	१२ अंगुल
जंघा	२४ अंगुल
जानु	४ अंगुल
पिण्डी	२४ अंगुल
चरण	४ अंगुल

योग १०८ अंगुल = ९ ताल [१]

ठक्कर फेरू द्वारा दिये गये अन्य विवरण ये हैं :- [२]

कानों के अंतराल में मुख का विस्तार	१४ अंगुल
गले का विस्तार	१० अंगुल
छाती प्रदेश	३६ अंगुल
कटि प्रदेश का विस्तार	१६ अंगुल
शरीर की मोटाई	१६ अंगुल
कान उदय	१० भाग
कान का विस्तार	३भाग
कान की लौंड़ी	२ १/२ भाग
कान का आधार	१ भाग
आँख की लम्बाई	४ भाग
आँख की चौड़ाई	१ १/२ भाग
आँख की काली पुतली	१ भाग
भ्रकुटि	२ भाग
कपोल	६ अंगुल
नासिका का विस्तार	३ भाग
नासिका का उदय	२ भाग
नासिकाग्र की मोटाई	१ भाग

१. वही, २।६-७। पाठान्तर में ललाट, नासिका, वचन, स्तनसूत्र, नाभि, गुह्य, उरु, जानु, जंघा और चरण, ये दस स्थान क्रमशः ४,५,४,१३,१४,१२, २४,४,२४,४, अंगुल प्रमाण बताये गये हैं।

२. वास्तुसार प्रकरण, २।९-२५

नासिका शिखा	१ /२ भाग
अधर का दीर्घता	५ भाग
अधर का विस्तार	१ अंगुल
श्री वत्स का उदय	४ भाग
स्तनवटिका का विस्तार	१ १ /२ भाग
नाभि का विस्तार	१ भाग
श्री वत्स और स्तन का अन्तर	६ भाग
स्तन वटिका और कक्ष का अन्तर	५भाग
स्कंध	८ भाग
कुहनी	७ अंगुल
मणिबंध	४ अंगुल
जंघा	१२ भार
जानु	८ भाग
एड़ी	४ भाग
स्तनसूत्र से नीचे भुजा	१२ भाग
स्तनसूत्र से ऊपर स्कंध	६ भाग
हाथ और पेट का अन्तर	१ अंगुल
उत्संग का विस्तार	४ अंगुल
उत्संग की लम्बाई	९ अंगुल
एड़ी से मध्य अंगुली तक	१५ अंगुल
एड़ी से अंगूठे तक	१६ अंगुल
एड़ी से कनिष्ठिका तक	१४ अंगुल
चरण की दीर्घता	१६ अंगुल
चरण का विस्तार	८ अंगुल
चरण का उदय	४ अंगुल

जिन प्रतिमा के सिंहासन और परिकर के मान का भी ठक्कर फेरू ने विवरण दिया है। प्रतिमा की अपेक्षा सिंहासन दीर्घता में डेवढ़ा विस्तार में आधा और मोटाई में चतुर्थांश होना चाहिए। उस पर गज, सिंह आदि नौ या सात रूपक होते हैं। सिंहासन के दोनों ओर यक्ष-यक्षिणी, एक-एक सिंह, एक-एक गज, एक-एक चामरधारी

और उनके बीच में चक्रधारिणी चक्रेश्वरी देवी बनाने का विधान है। इनका मान इसप्रकार है।

दायें ओर यक्ष	१४ भाग
बायें ओर यक्षी	१४ भाग
सिंह	१२-१२ भाग
गज	१०-१० भाग
चामरधारी	३-३ भाग
चक्रेश्वरी	६ भाग

तदनुसार सिंहासन की कुल लम्बाई ८४ भाग ।[१] चक्रेश्वरी देवी के नीचे धर्मचक्र और उसके दोनों ओर एक-एक हरिण तथा मध्यभाग में तीर्थंकर का चिन्ह बनाया जाता है।[२]

परिकर के पखवाड़े का उदय कुल ५१ भाग होता है।[३] उसमें आठ भाग चामरधारी का पादपीठ, ३१ भाग चामरधारी और तदुपरि १२ भाग तोरण के शिर तक। चामरधारी देवेन्द्रों की दृष्टि मूलनायक प्रतिमा के स्तनसूत्र के बराबर होती है। परिकर के छत्रवटा में, १० भाग अर्ध छत्र, १ भाग कमल नाल, १३ भाग मालाधारी, २ भाग स्तंभिका, ८ भाग दुंदुभिवादक, (तिलक के मध्य में घण्टा), २ भाग स्तंभिका, ६ भाग मकरमुख, इसप्रकार एक ओर ४२ भाग होने से दोनों तरफ का छत्रवटा ८४ भाग होता है।[४]

छत्र २४ भाग होता है। तदुपरि छत्रत्रय का उदय १२ भाग, तदुपरि शंखधारी ८ भाग, तदुपरि वंशपत्रादि ६ भाग ।इसप्रकार छत्रवटा का उदय ५० भाग का होता है।[५] छत्रत्रय का विस्तार २० अंगुल, निर्गम दस भाग, भामण्डल का विस्तार २२ भाग और प्रसार ८ भाग।[६] दोनों ओर के मालाधारी १६-१६ भाग के तदुपरि हाथी १८-१८ भाग के।

हाथी पर हरिनैगमेष, उनके सम्मुख दुन्दुभिवादक और मध्य में छत्रोपरि शंख फूंकने वाला होता है।[७]

१. वास्तुसार प्रकरण, २।२७
२. वही, २।२८
३. वही, २।३०
४. वास्तुसार प्रकरण, २।३२-३३
५. वही ३।३४
६. वही ३।३५
७. वही, २।३६

परिकर के पखवाड़े में दोनों चामरधारियों और वंशी-वीणाधारियों के स्थान पर कायोत्सर्ग जिन प्रतिमाएँ स्थितकर परिकर में पंचतीर्थ की योजना की जा सकती है।[१]

आचार दिनकर में सिंहासन और परिकर का स्वरूप इसप्रकार बताया गया है। जिनबिम्ब के सिंहासन पर गज, सिंह, कीचक का, अंकन, दोनों पार्श्व में चामरधारी और उनके बाह्य की ओर अञ्जलिधारी। मस्तक के ऊपर छत्रत्रय, छत्रत्रय के दोनों ओर सूंड में स्वर्णकलश लिए श्वेतगज, तदुपरि झांझ बजाते पुरुष, तदुपरि मालाधारी, शिखर पर शंख फूकने वाला और तदुपरि कलश [२]। आचार दिनकर कार ने सिंहासन के मध्य भाग में दो हरिणों के बीच धर्मचक्र और धर्मचक्र के दोनों ओर ग्रहों की प्रतिमाएँ बनाने का भी मत प्रकट किया है। [३]

नेमिचन्द्र, वसुनन्दि तथा अन्य दिगम्बर लेखकों ने [४] भी जिनप्रतिमा के साथ, सिंहासन, दिव्यध्वनि, चामरेन्द्र, भामण्डल, अशोकवृक्ष, छत्रत्रय, दुंदुभि और पुष्पवृष्टि इन आठ प्रातिहार्यों की योजना किये जाने का उल्लेख किया है। प्रातिहार्य योजना का निर्देश अपराजितपृच्छा [५] और रूपमण्डन[६] में भी मिलता है। रूपमण्डन के अनुसार जिनकी प्रतिमाएँ छत्रत्रय और त्रिरथिका से युक्त होती हैं। वे अशोक द्रुमपत्र दुन्दुभिवादक देवों, सिंहासन, असुरादि, गज, सिंह से विभूषित होती है। मध्य में कर्मचक्र (धर्मचक्र) होता है और दोनों पार्श्वों में यक्ष-यक्षिणी । परिकर का बाह्य विस्तार दो ताल और दीर्घता मूल प्रतिमा के बराबर बनाना चाहिए। इनके ऊपर तोरण होना चाहिए। बाह्य पक्ष में गोसिंहादि से अलंकृत वाहिकाएँ और द्वारशाखा से युक्त प्रतिमा बनानी चाहिए तथा उसमें विभिन्न देवताओं की मूर्तियाँ बनी होना चाहिए। रथिकाओं के नाम रूपमण्डनकार ने **ललित, चेतिकाकार, त्रिरथ, बलितोदर, श्री पुञ्ज, पञ्चरथिक और आनन्दवर्धन** ये सात दिये हैं। रूपमण्डन के अनुसार रथिका में ब्रह्मा, विष्णु, ईश, चण्डिका, जिन गौरी, गणेश अपने-अपने स्थान पर होते हैं।[७]

---

१. २।३८

२. आचार दिनकर, उदय ३३

३. वही, उदय ३३

४. प्रतिष्ठासार संग्रह, ५। ७४-७५, प्रतिष्ठातिलक, पृष्ठ ५७९-५८१

५. २२१।५७

६. ६।२७

७. रूपमण्डन, ६। ३३-३९